New Syllabus According to New Education Policy

बी.ए. तृतीय वर्ष हेतु : डेयरी मेनेजमेंट-दुग्ध उद्योग तकनीक

इकाई-1 **1. साधारण**

1.1 भारत में डेयरी विकास-चरण और योजना
1.2 सरकारों की योजना और वित्त अनुदान
1.3 प्रति व्यक्ति, भारत में दूध की उपलब्धता
1.4 भारतीय डेयरी की सामाजिक-आर्थिक और भौगोलिक विशेषता।
1.5 सहकारी-एनडीआरआई (राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान), एनडीडीबी (राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड), टीसीएमपीएफ (तमिलनाडु सहकारी दुग्ध उत्पादक संघ लिमिटेड)
1.6 डेयरी निर्माण क्षेत्र-इसकी संरचना और समस्याएं

इकाई-2 **2. डेयरीपालन**

2.1 महत्वपूर्ण नस्लों के विशिष्ट लक्षण।
2.2 गुणवत्ता वाले दूध के लिए डेयरी पशुओं को खिलाने का महत्व।
2.3 चारा उत्पादों का वर्गीकरण
A. रूफेज - फलीदार और गैर-फलीदार
- रसीले और सूखे।
B. सांद्रक-ऊर्जा और प्रोटीन चारा।
C. चारा की खुराक-खनिज और विटामिन
2.4 प्रमुख पोषक विकार और उनके निवारक जैसे दूध बुखार, ग्रासटेटनी रिकेट्स।
2.5 डेयरी पशुओं का परिवहन
2.6 स्वास्थ्य प्रबंधन - महत्वपूर्ण बीमारियां जैसे - एफएमडी (खाद्य और मुंह की बीमारी) एचएस (रक्तस्रावी सेप्टिसीमिया) टिमपान्टी, रुमेन का प्रभाव, डायस्टोसिया मिल्क फीवर, कीटोसिस।

इकाई-3 **3. प्रजनन**

3.1 डेयरी पशुओं के नर और मादा की एनाटॉमी।
3.2 प्रजनन की प्रणाली: इन ब्रीडिंग, आउट ब्रीडिंग, क्रॉस ब्रीडिंग, आउट क्रॉसिंग हाइब्रिडाइजेशन, क्रिस क्रॉसिंग, रोटेशनल क्रॉसिंग, या ट्रिपल क्रॉसिंग।
3.3 नवजात बछड़े को संभालना और उसकी सफाई करना।
3.4 बछड़ों में मृत्यु दर को कम करने के लिए प्रबंधन रणनीतियाँ।
3.5 डेयरी पशुओं के जीवन स्तर की देखभाल और प्रबंधन।
3.6 डेयरी फार्म रिकॉर्ड रखरखाव।
3.7 मादा डेयरी पशुओं का एस्ट्रस चक्र।
3.8 वीर्य का संग्रह, संचालन, संरक्षण, भंडारण और गर्भाधान।

■■■

अनुक्रमणिका (Index)

प्र.क्र. Q. No. | पृ.क्र. P. No.

इकाई-1

साधारण (Ordinary)

■ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

प्रश्न 1. डेयरी उद्योग क्या है ? भारत में डेयरी उद्योग के विकास तथा इतिहास को बतलाइए।
What is Dairy Farming? Explain the development of dairy industry in India. 9

प्रश्न 2. दुग्ध डेयरी व्यवसाय में सरकारों की योजना वित्त अनुदान का वर्णन कीजिए।
Describe the schemes and finance grants of governments in milk dairy business. 12

प्रश्न 3. भारत में प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता को बतलाइए।
Explain the per capita availability of milk in India. 15

प्रश्न 4. भारतीय डेयरी की सामाजिक-आर्थिक और भौगोलिक विशेषताए बताइये।
Explain the socio-economic and geographical characteristics of Indian dairy. 18

प्रश्न 5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-
Write short note on the following :
(1) राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान
(National Dairy Research Institute)
(2) राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड
(National Dairy Development Board)
(3) भारतीय डेयरी निगम (Indian Dairy Corporation)
(4) राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम
(National Co-operation Development Corporation (NCDC))
(5) तमिलनाडु सहकारी दुग्ध उत्पादक संग लिमिटेड
(Tamil Nadu Co-operation Milk Producer's Union Limited) 20

प्रश्न 6. डेयरी निर्माण क्षेत्र की संरचना और समस्या के बारे में विस्तार से बतलाइए।
Explain in detail about the structure and problems of dairy manufacturing sector. 24

इकाई-2

डेयरीपालन (Dairy Farming)

■ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

प्रश्न 7. भैसों की देशी तथा विदेशी नस्लों को बतलाइए। 32
Describe the indigenous and foreign breeds of buffaloes.

प्रश्न 8. गाय की प्रमुख देशी नस्लों का वर्णन कीजिए। 36
Describe the major indigenous breeds of Cows.

प्रश्न 9. गाय की विदेशी नस्लों की जानकारी दीजिए। 46
Give information about foreign breeds of cows.

प्रश्न 10. गुणवत्ता वाले दूध के लिए डेयरी पशुओं को खिलाने का महत्व बतलाइए। 48
Explain the importance of feeding dairy animals for quality milk.

प्रश्न 11. चारा उत्पादों का वर्गीकरण कीजिए। 50
Classify Roughages products.

प्रश्न 12. दुधारू पशुओं के आहार में सूक्ष्म खनिज तत्वों का महत्व बतलाइए। 52
Explain the importance of mirco minerals in the diet of Milch animals.

प्रश्न 13. पशुओं के आहार में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट तथा विटामिन के बारे में बतलाइए। 55
Tell about proteins, fats, carbohydrates and vitamins in the diet of animals.

प्रश्न 14. पशु आहार 'दाना' तथा 'अनाजों के उपजात' को बतलाइए। 61
Describe about concentrates and grains by products of Animal Food.

प्रश्न 15. पशुओं के निम्नलिखित रोगों के बारे में बतलाइए। 62
Tell about the following diseases of animals.
(1) दूध बुखार (Milk Fever)
(2) ग्रास टेटनी (Grass,Tetany)
(3) रिकेट्स (Rickets)

प्रश्न 16. डेयरी पशुओं के परिवहन पर एक लेख लिखिए। 64
Write an article on transportation of Dairy cattle.

प्रश्न 17. पशुओं के प्रमुख बीमारियों तथा उनका उपचार बतलाइए। 69
Explain the main diseases of animals and their treatments.

■ लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

प्रश्न 18. शुगरग्रेज चारे के बारे में लिखिए। 77
Write about Sugargraze Roughages.

प्रश्न 19. शुगरग्रेज प्रबन्धन पर टिप्पणी लिखिए। 78
Write note on Sugargraze Management.

प्रश्न 20. पशु आहार में मैग्नीशियम के कार्य लिखिए। 78
Write the function of Magnesium in animal food.

इकाई-3

प्रजनन (Reproduction)

■ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

प्रश्न 21. गाय और भैंस के विभिन्न भागों का वर्णन कीजिए। 79
Describe the different parts of Cow and Buffalo.

प्रश्न 22. गाय तथा भैंस के पाचन संस्थान का वर्णन कीजिए। 83
Describe the digestive system of cow and buffalo.

प्रश्न 23. गाय और भैंस के श्वसन संस्थान का वर्णन कीजिए। 85
Describe the respiratory system of cow and buffalo

प्रश्न 24. गाय और भैंस के जनन संस्थान का वर्णन कीजिए। 87
Describe the reproduction system of cow and buffalo.

प्रश्न 25. पशु प्रजनन से क्या आशय है ? प्रजनन के उद्देश्य लिखिए। 91
What is the meaning of breeding of Cattle? Write the aims of Cattle Breeding.

प्रश्न 26. पशु प्रजनन की प्रमुख विधियाँ बतलाइए। 93
Describe the main methods of Breeding.

प्रश्न 27. संकरण की विधियाँ बतलाइए। 96
Describe the methods of Cross Breeding.

प्रश्न 28. मादा पशुओं की प्रजनन संबंधी जानकारी दीजिए। 98
Give information related to reproduction of Female animals.

प्रश्न 29. भारत में पशु प्रजनन की प्रमुख समस्याएँ बतलाइए। 99
Describe the problems of animal breeding in India.

प्रश्न 30. नवजात बछड़े की देखभाल किस प्रकार करना चाहिए ? 100
How should newborn calf be taken care of?

प्रश्न 31. गाय तथा भैंस के नवजात बच्चों की मृत्यु के प्रमुख कारण बतलाइए।

Explain the main reasons for the death of newborn babies of cow and buffalo. 105

प्रश्न 32. नवजात बछड़ियो की मृत्यु दर को कम करने के लिए प्रबंधन रणनीतियाँ बतलाइए।
Explain the management strategy to reduce the mortality rate of New-born calf. 107

प्रश्न 33. डेयरी पशुओ के जीवन स्तर की देखभाल और प्रबंधन को समझाइये।
Explain the care and management of living conditions of dairy animals. 108

प्रश्न 34. डेयरी फार्म रिकार्ड क्या है ? इसका महत्व तथा उद्देश्य बतलाइए।
What is dairy farm record? Explain its importance and purpose. ***अथवा (Or)***
डेयरी फार्म रिकार्ड के रखरखाव के बारे में बतलाइए।
Explain about maintainance of dairy from records. 110

प्रश्न 35. पशु ऋतु चक्र या मद चक्र से क्या आशय है ? ऋतुमयी गाय के लक्षण बतलाइए।
What is the meaning of Estrous Cycle? Describe the signs of cow in heat. 113

प्रश्न 36. वीर्य का संग्रह,संचालन, संरक्षण भंडारण तथा गर्भाधान पर टिप्पणी लिखिए।
Write the note on collection, operation, preservation, storage and conception of semen. ***अथवा (Or)***
कृत्रिम गर्भाधान की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
Describe the Artificial Insemination Technique. 114

■ लघु उत्तरीय प्रश्न **(Short Answer Type Questions)**

प्रश्न 37. गाय तथा भैंस का रक्त संचार तंत्र को बतलाइए।
Describe the blood circulation of cow and buffalo. 123

प्रश्न 38. गाय तथा भैंस के दुग्ध विष्कासन संस्थान को बतलाइए।
Describe the milk secretion system of cow and buffalo. 124

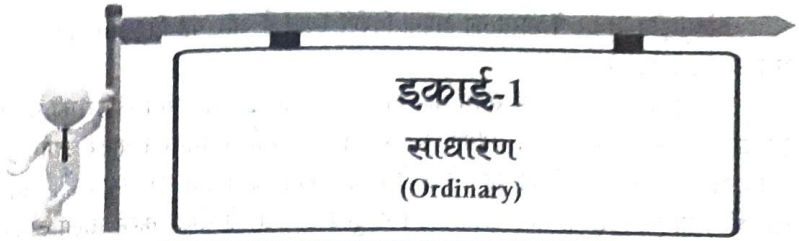
प्रश्न 39. कृत्रिम गर्भाधान से क्या आशय है ?
What is the meaning of Artificial Insemination. 125

प्रश्न 40. कृत्रिम गर्भाधान के उद्देश्य लिखिए।
Write the aims of Artificial Insemination 125

प्रश्न 41. कृत्रिम गर्भाधान के लाभ लिखिए।
Write the advantages of Artificial Insemination. 125

प्रश्न 42. कृत्रिम गर्भाधान की सीमाएँ लिखिए।
Write the limitation of Artificial Insemination. 125

■ **वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)** 126–128



इकाई-1
साधारण
(Ordinary)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

प्रश्न 1. डेयरी उद्योग क्या है ? भारत में डेयरी उद्योग के विकास तथा इतिहास को बतलाइए।
What is Dairy Farming? Explain the development of dairy industry in India.

उत्तर- दुग्ध कृषि (Dairy farming, Dairy industry, Milk Production) या डेरी उद्योग या दुग्ध उद्योग, कृषि की एक श्रेणी है। यह पशुपालन से जुड़ा एक बहुत लोकप्रिय उद्यम है जिसके अंतर्गत दुग्ध उत्पादन, उसकी प्रोसेसिंग और खुदरा बिक्री के लिए किए जाने वाले कार्य आते हैं। इसके वास्ते गाय-भैंसों, बकरियों या कुछेक अन्य प्रकार के पशुधन के विकास का भी काम किया जाता है। अधिकतर डेरी फार्म अपनी गायों के बछड़ों का, गैर-दुग्ध उत्पादक पशुधन का पालन पोषण करने की बजाए सामान्यत: उन्हें मांस के उत्पादन हेतु विक्रय कर देते हैं। डेरी फार्मिंग के अंतर्गत दूध देने वाले मवेशियों का प्रजनन तथा देखभाल, दूध की खरीद और इसकी विभिन्न डेरी उत्पादों के रूप में प्रोसेसिंग आदि कार्य सम्मिलित है। डेयरी उद्योग में अनेक पेशेवरों को काम पर रखा है और अपनी उपज की गुणवत्ता और दूध के लिए मूल्यवर्धन सुनिश्चित करने के लिए उच्च तकनीक अनुसंधान प्रयोगशालाओं और आधुनिक प्रसंस्करण संयंत्रों और परिवहन कोल्ड चेन का उपयोग करता है।

भारत का डेयरी उद्योग

भारत गांवों में बसता है। हमारी 72 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या ग्रामीण है तथा 60 प्रतिशत लोग कृषि व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। करीब 7 करोड़ कृषक परिवार में प्रत्येक दो ग्रामीण घरों में से एक डेरी उद्योग से जुड़े हैं। भारतीय दुग्ध उत्पादन से जुड़े महत्वपूर्ण सांख्यिकी आंकड़ों के अनुसार देश में 70 प्रतिशत दूध की आपूर्ति छोटे / सीमांत / भूमिहीन किसानों से होती है। भारत में कृषि भूमि की अपेक्षा गायों का ज्यादा समानता पूर्वक वितरण है। भारत की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ करने में डेरी उद्योग की प्रमुख भूमिका है।

देश में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में इसे मान्यता दी गई है। कृषि और डेरी फार्मिंग के बीच एक परस्पर निर्भरता वाला संबंध है। कृषि उत्पादों से मवेशियों के लिए भोजन और चारा उपलब्ध होता है जबकि मवेशी पोषण सुरक्षा माल उपलब्ध कराने के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के दुग्ध उत्पादों दूध, घी, मक्खन, पनीर, संघनित दूध, दूध का पाउडर, दही आदि का उत्पादन करता है।

अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारत का अपना विशेष स्थान है और यह विश्व में सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है।

संयोग से भारत विश्व में सबसे कम खर्च पर अर्थात् 27 सेंट प्रति लीटर की दर से दूध का उत्पादन करता है। यदि वर्तमान रूझान जारी रहता है तो मिनरल वाटर उद्योग की तरह दुग्ध प्रोसेसिंग उद्योग में भी बहुत तेजी से विकास होने की पर्याप्त संभावनाएं हैं। अगले 10 वर्षों में तिगुनी वृद्धि के साथ भारत विश्व में दुग्ध उत्पादों को तैयार करने वाला अग्रणी देश बन जाएगा।

इस उद्योग के तहत सरकारी और गैर सरकारी दोनों ही क्षेत्रों में रोजगार के अवसर मौजूद हैं। राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड (एनडीडीबी) विभिन्न स्थानों पर स्थित इस क्षेत्र का प्रमुख सार्वजनिक प्रतिष्ठान है, जो कि किसानों के नेतृत्व वाले व्यावसायिक कृषि संबंधी कार्यों में संलग्न है। देश में अब 400 से अधिक डेरी संयंत्र हैं जहाँ विभिन्न प्रकार के दुग्ध उत्पाद तैयार किए जाते हैं। उन्हें संयंत्रों के दक्षतापूर्ण संचालन के वास्ते सुयोग्य और सुप्रशिक्षित कार्मिकों की आवश्यकता होती है।

डेयरी उद्योग का इतिहास

दूध देने वाले पशुओं का पालन हजारों वर्षों से होता आ रहा है। प्रारंभ में, इनका उपयोग निर्वाह खेती के लिए खानाबदोश द्वारा किया जाता था। जब भी पूरा समुदाय दूसरे देश में स्थानान्तरण करता था ये उनके साथ होते थे। जानवरों की रक्षा करना और खिलाना यह जानवरों और चरवाहों के बीच सहजीवी सम्बन्ध का एक बड़ा हिस्सा था।

हाल के अतीत में, कृषि करने वाले समाज के लोग दुधारू जानवरों को कुटीर उद्योग के रूप में घरेलू और स्थानीय (गांव) में दूध की खपत के लिए पालते थे। जानवर कई प्रकार से इनके लिए उपयोगी हैं, उदाहरण के लिए जवानी के समय इनके लिए हल खींचते हैं और मरणोपरान्त इसका मांस उन लोगों के लिए उपयोगी होता है। इस मामले में आम तौर पर जानवरों को हाथ से दुहा जाता था और इनके झुंड का आकार काफी छोटा होता था, इसलिए सारे पशुओं के एक घंटे में दुह लिया जाता था - करीब दस प्रति दूध दुहने वाले इन कार्यों को दूध दुहने वाली (दूध दुहने वाली औरतें) या दूध दुहने वाला पूरा करते थे। डेयरी शब्द की उत्पत्ति अंग्रेजी के शब्द डेयरी से हुई है, डेये अर्थात् नौकरानी या दूध दुहने वाली महिला।

औद्योगीकरण और शहरीकरण के साथ, दूध की आपूर्ति ने वाणिज्यिक उद्योग का रूप ले लिया है, गोमांस और डिब्बाबंद से बिल्कुल भिन्न विशिष्ट नस्लों वाले मवेशियों को डेयरी के लिए विकसित किया गया। शुरू में, अधिक लोग दूध दुहने वाले के रूप में कार्यरत हुआ करते थे, लेकिन जल्दी ही मशीनीकरण के साथ यह काम मशीनों से होने लगा।

ऐतिहासिक रूप से डेयरी फार्मों में, एक ही समय और स्थान पर दूध दुहने और संसाधन करने का काम एक साथ किया जाता है। लोग हाथ से पशुओं को दुहते हैं; फार्म पर इनकी संख्या कम होने की वजह से, अभी भी हाथ से दूध दुहा जाता है। थन (अक्सर

इसे टिट या टिट्स भी कहा जाता है) को हाथों से पकड़कर दबाने से दूध बाहर आने लगता है, दूध निकालने के लिए इस प्रक्रिया को लगातार दोहराना पड़ता है, थन को उंगलियों और अंगूठे के द्वारा ऊपरी सिरे से दबाते हुए नीचे की ओर लाने से दूध निकलने लगता है। (ऊपरी) भाग में हाथ या उंगलियों की कार्रवाई करने से थन के अंत में दूध वाहिनी खुल जाती है और उंगलियों की गतिविधि से वाहिनी में रूका हुआ दूध धन से निकलने लगता है। प्रत्येक बार थन के आधे या चौथाई भाग से दूध वाहिनी की क्षमता को खाली कर लिया जाता है।

अनावृत करने की क्रिया को दोनों हाथों का प्रयोग कर तेजी से दोहराना पड़ता है। दोनों ही तरीकों से दूध वाहिनी में अटका हुआ दूध बाहर आने लगता है और (जमीन में बैठकर) घुटनों के बीच एक बाल्टी को टिकाकर दूध दुहने वाले दूध को बाल्टी में इकट्ठा कर लेते हैं, आमतौर पर दूध दहनेवाले एक छोटी स्टूल पर बैठते हैं।

परंपरागत रूप से गाय, दूध दुहते समय किसी मैदान या अहाते में खड़ी होती हैं। छोटी गाय, बछिया को भी दूध निकालने के समय स्थिर होकर खड़े रहने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। कई देशों में, गायों को दूध निकालने के समय एक खंभे से बांध दिया जाता है। इस पद्धति के साथ समस्या यह है कि इन शांत, विनयशील जानवरों पर निर्भर करता है, क्योंकि गाय के पीछे के भाग को नियंत्रित नहीं किया जा सकता है।

1937 में, यह पाया गया कि बोविने सोमातोत्रोपिन (बीएसटी या गोजातीय वृद्धि हार्मोन) दूध की मात्रा में वृद्धि करती हैं। मोनसेंटो कंपनी ने इस हार्मोन (आरबीएसटी) का एक कृत्रिम संस्करण (पुन: संयोजन) विकसित किया। फरवरी 1994 में, आरबीएसटी को खाद्य एवं औषधि प्रशासन (एफडीए) ने अमेरिका में प्रयोग के लिए मंजूरी दे दी थी। इससे यह अमेरिका में आम हो गया, लेकिन और कहीं नहीं, दुधारू गायों को इसकी सुई देने से उनके दूध में 15% तक की वृद्धि हो जाती है।

हालांकि, ऐसे दावे भी किये गए हैं कि इस अभ्यास से जानवरों के लिए नकारात्मक परिणाम हो सकते हैं। यूरोपीय संघ के वैज्ञानिक आयोग ने डेयरी गायों के विकारों और अन्य स्तन की सूजन की घटना के बारे में और डेयरी गायों के कल्याण के अन्य पहलुओं पर रिपोर्ट करने को कहा। आयोग के बयान को, बाद में यूरोपीय संघ द्वारा अपनाया गया, वक्तव्य दिया गया कि आरबीएसटी के प्रयोग से गायों को स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है इनमें पैर की समस्याएं, स्तन की सूजन और इंजेक्शन की तत्कालिक प्रतिक्रियाओं सहित पशुओं के कल्याण और प्रजनन विकारों की वृद्धि होती है। रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निकाला गया कि स्वास्थ्य और पशुओं के कल्याण के आधार पर, आरबीएसटी का प्रयोग नही किया जाना चाहिए. स्वास्थ्य कनाडा ने 1999 में आरबीएसटी की बिक्री को निषिद्ध कर दिया; बाहरी समितियों की सिफारिशों थी कि, मनुष्य के स्वास्थ्य पर कोई खास जोखिम नहीं होने के बावजूद, यह दवा पशु के स्वास्थ्य के लिए एक खतरा है, इसी कारण इसे कनाडा में बेचा नहीं जा सकता।

प्रश्न 2. दुग्ध डेयरी व्यवसाय में सरकारों की योजना वित्त अनुदान का वर्णन कीजिए।
Describe the schemes and finance grants of governments in milk dairy business.

उत्तर- भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय डेयरी विकास कार्यक्रम (एनपीडीडी) योजना शुरू की गई थी। एनपीडीडी योजना डेयरी विकास के लिए तकनीकी और वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए डिजाइन की गई है और इस प्रकार किसानों को प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान करके अपनी गतिविधियों का विस्तार करते हुए दुग्ध महासंघ / संघों द्वारा प्रसंस्करण, उत्पादन, विपणन और खरीद से संबंधित बुनियादी ढांचे का निर्माण किया जाता है।

यह योजना डेयरी गतिविधियों को वैज्ञानिक और समग्र तरीके से लागू करने और दूध उत्पादन को एकीकृत करने के उद्देश्य से लागू की गई है ताकि दूध उत्पादन और इसकी उत्पादकता के उच्च स्तर को प्राप्त किया जा सके और अंततः देश में दूध की बढ़ती मांग को पूरा किया जा सके। डेयरी और इसकी अन्य गतिविधियाँ लाखों ग्रामीण परिवारों के लिए आय का एक बहुत ही महत्वपूर्ण माध्यमिक स्रोत बन गई है और विशेष रूप से सीमांत और महिला किसानों के लिए आय-सृजन के अवसर और रोजगार के अवसर प्रदान करने में इसकी सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि अधिकांश दूध पशुओं द्वारा उत्पादित किया जाता है।

योजना के उद्देश्य

- गुणवत्ता वाले दूध के उत्पादन के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचे को मजबूत करना और बनाना, जिसमें कोल्ड चेन बुनियादी ढांचे का निर्माण और विकास शामिल है जो किसानों और उनके उपभोक्ताओं के बीच संबंध बढ़ाएगा।
- दूध के उत्पादन, खरीद, विपणन और प्रसंस्करण के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचे को मजबूत करना और बनाना।
- डेयरी किसानों के प्रशिक्षण के लिए उचित प्रशिक्षण बुनियादी ढांचे और सुविधाओं का निर्माण करना।
- ग्रामीण स्तर पर डेयरी उत्पादक कंपनियों/सहकारी समितियों को मजबूत करना
- खनिज मिश्रण और पशु चारा आदि जैसी सबसे आवश्यक तकनीकी इनपुट सेवाएँ प्रदान करके दूध का उत्पादन बढ़ाना, पुनर्वास क्षमता और व्यवहार्य दुग्ध संघों / संघों की सहायता करना।

संचालन के क्षेत्र

- राष्ट्रीय डेयरी योजना
- चरण 1 (एनडीपी-1) राज्यों (यानी, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, हरियाणा, केरल, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, तमिलनाडु, पंजाब, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश)।
- एनपीबीबीडीडी का क्रियान्वयन पूरे देश में किया जाएगा।

वित्तीय सीमाएँ और अन्य सीमाएँ

- परियोजना के लिए केंद्र सरकार की सहायता प्रदान की जाएगी और यह प्रति जिले कुल 15 करोड़ रुपये तक सीमित होगी।
- "तकनीकी इनपुट सेवाओं" के लिए प्रदान की जाने वाली किसी भी प्रकार की सहायता इसकी परियोजना लागत की 15% की सीमा के अधीन होगी।
- दूध पाउडर संयंत्रों के लिए, प्रति जिला केंद्रीय अनुदान प्रति जिले 5 करोड़ रुपये की राशि तक सीमित होगा।
- दूध पाउडर संयंत्र की स्थापना के लिए केंद्रीय अनुदान केवल डेयरी सहकारी समितियों तक ही सीमित होगा।
- 30 मीट्रिक टन क्षमता के दूध पाउडर संयंत्र की स्थापना / उन्नयन के लिए, जिलों के एक समूह को कवर करने वाले दूध शेड से अधिशेष दूध को दूध पाउडर संयंत्र की आर्थिक व्यवहार्यता सुनिश्चित करने के लिए एक साथ एकत्र किया जा सकता है।
- पशु प्रेरण के लिए कोई भी सहायता केवल बीपीएल परिवारों, अनुसूचित जनजातियों और अनुसूचित जातियों के लिए ही दी जाएगी।
- महिला किसानों को छोड़कर सभी मामलों में पशु प्रेरण के लिए सब्सिडी कुल 50% तक सीमित होगी। सब्सिडी की गणना की लागत में शामिल होंगे: मवेशियों की लागत, पशु बीमा और परिवहन लागत।
- मवेशी प्रेरण कुल परियोजना लागत के 10% की अधिकतम सीमा के अधीन होगा।
- कौशल विकास के लिए प्रशिक्षण केंद्र की स्थापना और / या उन्नयन के लिए जनशक्ति और कौशल विकास की सहायता प्रदान की जाएगी। इस घटक के तहत कुल सहायता 75 लाख रुपये या कुल परियोजना लागत का 5%, जो भी कम हो, से अधिक नहीं होगी।
- विस्तृत योजना और निगरानी परियोजना लागत के 5% तक सीमित होगी।
- पशु प्रेरण के लिए सब्सिडी तत्व में महिला दुग्ध उत्पादकों के लिए लागत की अधिकतम सीमा 75% होगी।
- सूचना और संचार प्रौद्योगिकी नेटवर्किंग के लिए आवश्यक सहायता परियोजना लागत की अधिकतम 10% सीमा के अधीन होगी।
- कार्यशील पूंजी के लिए कोई भी सहायता परियोजना के अंतिम वर्ष में अनुमानित 21 दिन की दूध खरीद' के कुल मूल्य तक सीमित होगी।
- केंद्रीय अनुदान के रूप में पुनर्वास सहायता 5 करोड़ रुपये की सीमा तक सीमित होगी।

एनपीडीडी के कौशल विकास के अंतर्गत शामिल प्रशिक्षण संस्थान

- कृषि विज्ञान केन्द्रों पर प्रशिक्षण केन्द्र,
- केंद्रीय / राज्य कृषि / पशु चिकित्सा / डेयरी विज्ञान विश्वविद्यालय/कॉलेजों में प्रशिक्षण संस्थान। दुग्ध उत्पादक कंपनियों में प्रशिक्षण केंद्र,
- राज्य दुग्ध संघों / जिला दुग्ध संघों में प्रशिक्षण केंद्र,
- राज्य के पशुपालन / डेयरी विकास विभाग में प्रशिक्षण केंद्र।

उपरोक्त प्रशिक्षण के सुदृढ़ीकरण/उन्नयन के लिए, एन.पी.डी.डी. के तहत परियोजना के कार्यान्वयन के दौरान लगभग 3 साल या उसमें अधिक की अवधि के लिए डेयरी पी.आर.आई/सहकारी समितियों के दूध उत्पादक सदस्यों के प्रशिक्षण आयोजित/संचालित करने के उद्देश्य से केन्द्रों की सहायता ली जाएगी।

प्रशिक्षण केंद्रों का प्रशासनिक निकाय और एसआईए कुछ नियमों और शर्तों पर परस्पर सहमति के बाद ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं।

दुग्ध उत्पादकों को प्रदान की जाने वाली सेवाएँ

- एमपीसीएस में डोरस्टेप पशु चिकित्सा उद्भव और स्वास्थ्य सेवाएं प्रति वर्ष लगभग 18 लाख कृत्रिम गर्भाधान (एआई) किया जाता है।
- पशु आहार सब्सिडी 2-4 रुपये प्रति किलोग्राम दी गई (मौजूदा बाजार दरों के अनुसार हर महीने संशोधित की जाएगी) दुग्ध उत्पादकों को 25 रुपये प्रति किलोग्राम की सब्सिडी पर खनिज मिश्रण की आपूर्ति की जाती है।
- लगभग सभी जिला दुग्ध संघों में बड़े पैमाने पर कृमि मुक्ति और बांझपन के मामलों के इलाज के लिए गांवों में समय-समय पर पशु स्वास्थ्य शिविर आयोजित किए जाते हैं।
- संघ भूमि में चारे की खेती के माध्यम से दूध उत्पादकों को हरा चारा और चारा पर्ची प्रदान की जाती है।
- पशुपालन विभाग के समन्वय से हर साल दो बार एफएमडी टीकाकरण किया जाता है, जिसमें तमिलनाडु में सहकारी दायरे में लगभग 17 लाख जानवरों को शामिल किया जाता है।
- प्रशिक्षण केन्द्रों में दुग्ध उत्पादकों एवं ग्राम स्तरीय कार्यकर्ताओं को नियमित प्रशिक्षण दिया जाता है। जिला संघों द्वारा अर्जित लाभ को दुग्ध उत्पादकों के साथ 60 पैसे प्रति लीटर से लेकर 1.60 रुपये प्रति लीटर तक प्रोत्साहन देकर साझा किया जाता है।
- जब भी सोसायटी किसी प्रकार का लाभ कमाती है, तो लाभ का 50% दूध उत्पादित दूध में वापस चला जाता है, जैसा कि दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों के उपनियमों में बताया गया है।
- इस योजना के तहत उत्पादकों के अनुरोध और बजट के अनुसार आवश्यक होने पर बल्क मिल्क कूलर (बीएमसी) स्थापित किए जाते हैं।

प्रश्न 3. भारत में प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता को बतलाइए।
Explain the per capita availability of milk in India.

उत्तर-

भारत में प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता

राज्य / केंद्र शासित प्रदेश वार प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता (ग्राम प्रति दिन)

राज्य / कें. शा. प्रदेश	01-02	02-03	03-04	04-05	05-06	06-07	07-08	08-09	09-10	10-11	11-12	12-13	13-14	14-15	15-16	16-17	17-18	18-19	19-20
भारत	225	230	231	233	241	251	260	266	273	281	290	299	307	319	333	351	370	390	406
आंध्र प्रदेश	209	231	238	250	260	268	298	316	342	364	391	409	413	522	579	649	728	794	799
अरुणाचल प्रदेश	105	112	109	114	113	114	73	55	59	63	44	49	93	88	95	99	100	101	110
असम	70	71	71	72	72	71	70	70	69	71	70	69	69	70	70	71	71	71	73
बिहार	88	92	100	147	154	163	170	172	175	184	175	188	195	193	202	209	218	228	240
छत्तीसगढ़	105	103	102	103	103	102	103	106	110	117	120	127	130	126	128	136	144	151	159
गोवा	91	91	93	110	105	104	102	99	96	93	113	92	98	122	99	93	99	102	109
गुजरात	317	321	330	344	349	372	385	402	418	435	445	476	506	506	522	538	563	593	615
हरियाणा	645	647	643	631	628	624	621	644	662	679	720	767	800	813	847	896	965	1040	1118
हिमाचल प्रदेश	341	339	337	378	373	393	420	424	397	446	447	460	461	456	494	509	529	552	573
जम्मू एवं कश्मीर	367	365	363	364	353	348	372	378	379	378	352	316	302	413	476	494	507	520	507
झारखंड	96	94	92	127	126	130	132	132	130	136	145	146	146	137	141	145	152	162	170

कर्नाटक	249	229	190	194	197	199	203	215	226	237	244	262	272	266	273	280	302	332	375
केरल	234	203	173	169	171	174	183	197	201	210	223	216	203	218	211	200	203	200	198
मध्य प्रदेश	240	236	233	233	262	260	264	271	278	287	308	327	349	387	428	467	504	538	568
महाराष्ट्र	172	172	172	176	178	181	184	188	190	197	206	213	219	225	236	240	254	264	269
मणिपुर	86	85	85	90	92	91	91	90	88	88	80	80	80	76	72	72	74	76	79
मेघालय	78	78	78	81	82	81	83	83	83	83	74	83	84	74	74	74	74	74	74
मिजोरम	43	45	44	46	43	46	47	47	29	31	35	36	40	50	52	57	59	60	54
नागालैण्ड	78	78	83	90	96	86	58	67	96	93	108	94	95	102	102	104	96	93	78
ओडिशा	69	68	71	92	95	100	113	110	112	113	112	114	122	121	121	125	129	142	144
पंजाब	892	895	898	917	943	957	956	955	944	937	945	961	980	992	1020	1061	1105	1165	1221
राजस्थान	376	368	371	376	387	449	486	501	509	538	539	555	572	645	691	769	817	850	904
सिक्किम	187	222	231	221	232	231	195	194	200	194	202	186	200	217	286	231	247	254	345
तमिलनाडु	219	198	198	204	231	263	272	274	278	278	265	280	280	265 321	267 336	277 352	283 371	304 401	316 410
त्रिपुरा	77	66	68	70	70	71	72	74	77	80	83	88	95	102	108	113	122	128	136
उत्तर प्रदेश	241	245	250	254	262	267	274	278	283	289	310	312	318	329	339	352	363	377	387
उत्तराखंड	344	339	365	364	361	357	354	351	387	383	384	403	418	404	421	426	433	441	447

पश्चिम बंगाल	120	120	120	124	126	127	129	131	133	137	140	145	145	147	146	149	154	160	165
अंडमान एवं निकोबार द्वीपसमूह	177	195	183	165	135	148	146	154	137	142	187	131	84	110	108	113	118	126	130
चंडीगढ़	131	127	127	115	116	112	106	101	95	87	117	103	101	109	105	88	101	106	113
दादरा तथा नगर हवेली	100	97	95	45	53	50	94	91	86	83	89	101	98	57	54	45	43		
दमन एवं दीव	17	17	16	10	11	12	15	15	15	14	11	13	10	8	7	5	6	7	8
दिल्ली	58	57	56	54	54	48	73	72	72	72	82	41	39	43	42	41	40		
लक्षद्वीप	90	87	43	45	64	79	79	84	84	71	85	82	219	174	135	132	149	150	152
पुडुचेरी	104	101	107	108	108	110	108	101	96	94	99	113	111	97	96	94	93	92	90

प्रश्न 4. भारतीय डेयरी की सामाजिक-आर्थिक और भौगोलिक विशेषताए बताइये।
Explain the socio-economic and geographical characteristics of Indian dairy.

उत्तर- डेयरी व्यवसाय

डेयरी के पेशे में तीन मुख्य गतिविधियाँ शामिल हैं, अर्थात् उत्पादन, प्रसंस्करण और विपणन। भारतीय डेयरी की सामाजिक-आर्थिक और भौगोलिक विशेषता मोटे तौर पर सभी दूध उत्पादकों, दूध की हैंडलिंग और प्रसंस्करण, दूध और दूध उत्पादों के परिवहन और विपणन को कवर करती है। इसमें दूध उत्पादक से लेकर अंतिम उपभोक्ता तक सभी संस्थानों और संगठनों को भी शामिल किया गया है।

डेयरी उद्योग में शामिल है/या बनता है

(i) दूध उत्पादन, प्रसंस्करण और विपणन का पारंपरिक क्षेत्र जिसमें शामिल है

- निर्माता से उपभोक्ता तक
- उत्पादक से व्यापारी से उपभोक्ता तक
- उत्पादक से दूध संग्रहकर्ता से निजी व्यापारी (छोटी डेयरी) से उपभोक्ता तक।

(ii) सरकारी और निजी डेयरियाँ: उत्पादक से लेकर उपभोक्ताओं तक।

(iii) सहकारी डेयरियाँ: उत्पादक से लेकर गाँव की दुग्ध सहकारी समितियों के माध्यम से दुग्ध संघ तक और अंततः दूध विपणन संघ के माध्यम से उपभोक्ताओं तक।

28.3 दूध उत्पादन से संबंधित बाधाएँ

देशी नस्लों की कम उत्पादकता, दूध सुधार कार्यक्रमों को सीमित करती है। गुणवत्तापूर्ण डेयरी पशुओं की कमी है और मांग की तुलना में ऐसे पशुओं की आपूर्ति कम है। अपर्याप्त चारा एवं चारा संसाधन दूध उत्पादन की तीव्र वृद्धि में बाधक हैं। बीमारियों के कारण नैतिकता की उच्च दर और रुग्णता (उत्पादन में कमी) से भारी आर्थिक हानि होती है। पशुधन के बारे में आँकड़े अपर्याप्त हैं और पशुधन आँकड़ों के प्रकाशन में देरी होती है।

भारत में कृषि के साथ-साथ मिश्रित खेती के रूप में दुग्ध उत्पादन किया जाता है। छोटे एवं सीमांत किसानों/दुधारू पशुपालकों को गरीब माना जा सकता है। उनके पास सीमित संसाधन हैं और वे जानवरों को खिलाने में असमर्थ हैं (यानी वे अपने जानवरों को संतुलित चारा देने में असमर्थ हैं) दूध उत्पादक पूरे देश में गांवों में फैले हुए हैं।

भारत में दूध का उत्पादन व्यक्तिगत दूध उत्पादकों द्वारा किया जाता है जो आम तौर पर 2 से 3 दुधारू मवेशी रखते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में मुख्यतः दुधारू पशु पाले जाते हैं और बड़ी मात्रा में दूध ग्रामीण क्षेत्रों से आता है। दूध का उत्पादन मुख्यतः गाय, भैंस तथा बकरियों से नगण्य मात्रा में प्राप्त होता है। औसतन अधिकांश किसान और भूमिहीन मजदूर (पशुधन धारक) एक गाय/भैंस, एक या दो युवा पशु रखते हैं। बैलों के स्थान पर नर बछड़े को और गायों के स्थान पर मादा बछड़ों को पाला जाता है। धार्मिक दृष्टि से हमारे देश में दुधारू पशुओं का वध नहीं किया जाता।

ऐसे खानाबदोश पशुपालक हैं जो मवेशी (विशेषकर गाय) रखते हैं और उनका पालन-

पोषण करते हैं। उनके पास 25/50 से 500 तक मवेशी हैं। वहाँ युवा पशु, गायें और बैल होंगे। वे किसानों को नर युवा पशु और बैलों की आपूर्ति करते हैं और कभी-कभी गायें बेचते हैं।

28.4 डेयरी का भौगोलिक वितरण

डेयरी के उद्देश्य से देश को चार क्षेत्रों/क्षेत्रों में विभाजित किया गया है अर्थात उत्तरी, पश्चिमी और दक्षिणी और मध्य और पूर्वी क्षेत्र। इन क्षेत्रों में निम्नलिखित राज्य शामिल हैं।

उत्तरी: दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, पंजाब और उत्तर प्रदेश

पश्चिमी: गुजरात, गोवा, महाराष्ट्र, दादरा नगर हवेली

दक्षिणी: आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु और पांडिचेरी

मध्य और पूर्वी: अंडमान और निकोबार, अरुणाचल प्रदेश, असम, बिहार, मध्य प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, उड़ीसा, सिक्किम, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल।

28.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुपालन/डेयरी व्यवसाय की भूमिका

भारत कृषी प्रधान देश है। कृषि और पशुपालन/डेयरी परस्पर निर्भर हैं और भारतीय परिस्थितियों में अविभाज्य हैं जहां सदियों से मिश्रित खेती की जाती रही है। एक अवलोकन के अनुसार, कृषि भारत की रीढ़ है और पशु ह्युवांड्री कृषि की रीढ़ है। बड़ी संख्या में ग्रामीण आबादी के लिए कृषि आजीविका का मुख्य व्यवसाय है और व्यवसाय के बजाय जीवन जीने का एक तरीका है। कृषि से होने वाले कुल उत्पादन में से कई वस्तुओं का निर्यात किया जाता है और इन निर्यातों से बहुमूल्य विदेशी मुद्रा अर्जित होती है, जिसका उपयोग प्रौद्योगिकी, पेट्रोलियम उत्पाद, पूंजीगत सामान और देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक अन्य चीजों के आयात के लिए किया जाता है। पशु पशुपालन क्षेत्रों से मुख्य निर्यात खाल और चमड़े के सामान, ऊन, आदि हैं।

कामकाजी जानवर कृषि कार्यों, परिवहन और पैक जानवरों (पैक जानवर: भार वाहक जैसे गधा) के रूप में ऊर्जा प्रदान करते हैं। एक अनुमान के अनुसार कृषि में लगभग 64% ऊर्जा पशुधन (विशेष रूप से बैल) द्वारा प्रदान की जाती है, 10% मशीनीकरण द्वारा और शेष 26% मानव द्वारा मैन्युअल रूप से प्रदान की जाती है।

1 बैल = 1/2 एच. पी. और

बैल की जोड़ी = 1 एच.पी.

बैलों द्वारा प्रति वर्ष लगभग 1200 करोड़ कार्य घंटे उपलब्ध कराये जाते हैं। गोबर और मूत्र को गोबर की खाद के रूप में कृषि में आपूर्ति की जाती है जो मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में मदद करती है।

एक वर्ष में लगभग 1200 मिलियन टन गोबर का उत्पादन होता है जिसमें से लगभग 585 मिलियन टन ईंधन के रूप में, 215 मिलियन टन खाद के रूप में उपयोग किया जाता है और बाकी अप्रयुक्त और बर्बाद हो जाता है। भारत में गाय के गोबर से बायोगैस का

निर्माण बढ़ रहा है जो समाज को बायोगैस और बिजली के रूप में ईंधन की आपूर्ति करता है। बायोगैस के बचे हुए घोल का उपयोग खाद बनाने के लिए किया जा सकता है। पशुधन उत्पाद के रूप में बायोगैस का उपयोग खाना पकाने की गैस और प्रकाश (बिजली) के रूप में किया जाता है जो ऊर्जा की आवश्यकता को पूरा करेगा और केरोसिन, कोयला और लकड़ी के कोयले जैसे पेट्रोलियम उत्पादों के उपयोग को बचाएगा। पशुधन कृषि के अवशेषों को ऐसे अपशिष्ट में परिवर्तित कर रहा है जिसकी मनुष्य को आवश्यकता नहीं है। पशु इस अवशेष का उपयोग कर रहे हैं और दूध, मांस, अंडे आदि के रूप में मानव जाति के लिए आवश्यक विभिन्न उत्पाद प्रदान कर रहे हैं। पशु प्रोटीन की आपूर्ति कर रहे हैं जो पुरुषों के लिए आवश्यक है। दूध को बच्चों के लिए संपूर्ण आहार माना जाता है। पशुधन प्रबंधन ग्रामीण लोगों को रोजगार और आय प्रदान करता है और बेरोजगारी और गरीबी की समस्या को हल करने में मदद करता है।

विभिन्न पशुपालन कार्यक्रमों में डेयरी फार्मिंग का प्रमुख एवं महत्वपूर्ण स्थान है। एक अनुमान के अनुसार, पशुधन से प्राप्त कुल आय में से 64.5 प्रतिशत दूध और दुग्ध उत्पादों से, 9.7 प्रतिशत मवेशियों के खाद से, 7.9 प्रतिशत मांस और मांस उत्पाद से, 2.5 प्रतिशत खाल और त्वचा से, 1.1 प्रतिशत बालों से प्राप्त होती है। ऊन, अंडे और मुर्गी से 2.4 प्रतिशत, हड्डियों से 0.1 प्रतिशत, स्टॉक में वृद्धि से 2.1 प्रतिशत। यह महसूस किया गया है कि डेयरी को बढ़ावा देने से बेहतर स्वास्थ्य में योगदान मिलता है और रोजगार के पर्याप्त अवसर पैदा होते हैं। जब सही ढंग से संगठित किया जाता है, तो डेयरी सामाजिक और आर्थिक न्याय प्राप्त करने का एक प्रभावी साधन बन जाता है।

प्रश्न 5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-
Write short note on the following :

(1) राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान
(National Dairy Research Institute)

(2) राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड
(National Dairy Development Board)

(3) भारतीय डेयरी निगम (Indian Dairy Corporation)

(4) राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम
(National Co-operation Development Corporation (NCDC))

(5) तमिलनाडु सहकारी दुग्ध उत्पादक संग लिमिटेड
(Tamil Nadu Co-operation Milk Producer's Union Limited)

उत्तर- (1) राष्ट्रीय डेयरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल (National Dairy Research Institute, Karnal) –डेयरी विकास एवं अनुसन्धान के प्रति दृढ़ संकल्प यह एक राष्ट्रीय संस्थान है। यहाँ संगठित आधार पर डेयरी अनुसन्धान कार्य चल रहे हैं। इसके तीन क्षेत्रीय स्टेशनों बंगलुरू (जो पहले इम्पीरियल डेयरी अनुसन्धान संस्थान के नाम से जाना जाता था), मुम्बई एवं कल्याणी पर भी डेयरी अनुसन्धान पर गहन कार्य चल रहे हैं। ये क्षेत्रीय

स्टेशन मुख्यतः सम्बन्धित क्षेत्रीय स्तर पर डेयरी की समस्याओं पर अनुसन्धान करते हैं।

राष्ट्रीय डेयरी अनुसन्धान केन्द्र, करनाल में कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र में वृहद् एवं विविध विषयों पर गहन अनुसन्धान चल रहे हैं; जैसे-चारा उत्पादन, पशु प्रजनन, गायों एवं भैंसों के राशन एवं प्रबन्ध, दुग्ध उत्पादन एवं संसाधनों, दुग्ध उत्पादों का निर्माण एवं पैकेजिंग एवं वितरण तकनीक आदि।

राष्ट्रीय डेयरी अनुसन्धान संस्थान में चल रही कुछ महत्त्वपूर्ण परियोजनाएँ एवं इस संस्थान की उपलब्धियाँ अग्रलिखित हैं-

(a) दूध एवं घी के रासायनिक विश्लेषण की विधियों की उपयुक्तता का परीक्षण किया जाता है। इस संस्थान में दुग्ध में मिलावट की पहचान के लिये विभिन्न परीक्षण विधियाँ विकसित की गयी हैं। गाय के दूध में भैंस के दूध की मिलावट की पहचान के लिये प्रसिद्ध 'हंस टेस्ट' यहीं विकसित किया गया है।

(b) चरणबद्ध संकर प्रजनन विधि द्वारा गाय एवं भैंसों की कई उत्तम नस्लें यहाँ विकसित गयी हैं। संकर प्रजनन कार्यक्रम यहाँ 1963 से चल रहे हैं। गाय की दो महत्त्वपूर्ण संकर नस्लें करन स्वीस एवं फ्राई यहाँ विकसित की गयीं।

(c) प्रजनन तकनीक की कई आधुनिक विधियाँ यहाँ विकसित की गयी हैं। अधिउत्सर्जन (Superovulation) तकनीक द्वारा भैंसों के क्लोन NDRI, करनाल में तैयार किये गये है। इसके Animal biotechnology विभाग में 6 फरवरी 2009 को भैंस के पहले क्लोन का जन्म हुआ जो विश्व का पहला भैंस का क्लोन है। प्रजनन की अन्य विधियों; जैसे- भ्रूण स्थानान्तरण (Embryo transfer) तकनीक, कृत्रिम गर्भाधान तकनीक आदि विकसित करने में यह संस्थान पथ-प्रदर्शक रहा है। यहाँ प्रशीतित वीर्य (Frozen semen) तकनीक विकसित की गयी, जिसका पशु प्रजनन में अत्यधिक महत्त्व है।

(d) यहाँ डेयरी इन्जीनियरिंग अनुसन्धान भी होता है। यह संस्थान अन्य डेयरी इन्जीनियरिंग संस्थानों के साथ सहयोग (Collaboration) द्वारा डेयरी सम्बन्धित कई तकनीक विकसित करने में सफल रहा है। सस्ती दर पर तथा बिना विद्युत के प्रयोग किये प्रशीतन की विधि यहाँ विकसित की गयी है। अमोनियम विलयन आधारित प्रशीतन तन्त्र गाँवों एवं दूरस्थ क्षेत्रों में काफी लाभदायक सिद्ध हुआ है। स्टेनलेस स्टील कूलर के स्थान पर NDRI ने फाइबर ग्लास कूलर विकसित किया है जो काफी सस्ता है।

(e) डेयरी में अत्याधुनिक तकनीक (जिनमें जैव-प्रौद्योगिकी, आणविक जीव विज्ञान, जैव-रसायन तकनीक आदि शामिल है) का प्रयोग कर यह संस्थान डेयरी उत्पादों, उनकी गुणवत्ता, पशु नस्ल पहचान, पशु प्रजनन, प्रबन्ध आदि सम्बन्धित बिन्दुओं पर काफी गहन अनुसन्धान कर रहा है।

(f) पशु विज्ञान (Animal science) एवं सम्बन्धित क्षेत्रों में मौलिक एवं स्ट्रेटेजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में सफल नेतृत्व करना।

(2) राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड (National Dairy Development Board)—इसे NDDB कहते हैं। इसकी स्थापना 1965 में की गयी। यह संस्थान विशेष रूप से दुग्ध उत्पाद, दुग्ध संसाधन, मानव संसाधन विकास पर अनुसंधान एवं विकास सम्बन्धी कार्यों में संलग्न रहा है। यह संस्थान डेयरी परियोजनाओं के क्रियान्वयन में मुख्य भूमिका निभाता रहा है। ये परियोजनाएँ डेयरी के समेकित विकास से जुड़े मुद्दों पर आधारित रही हैं। इनमें दुग्ध संसाधन प्लान्ट की स्थापना एवं डेयरी उत्पादों के विपणन के लिए तकनीकी निवेश को बढ़ावा देना शामिल है। इसके लिए NDDB ने व्यवहार्य सहकारी एवं कृषक संगठनों के गठन तथा उन्हें दुग्ध उत्पादों के संग्रहण, संसाधन एवं विषणन की सुविधा उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इस प्रकार इस संस्था का उद्देश्य डेयरी को ग्रामीण सामाजिक एवं आर्थिक विकास के माध्यम के रूप में स्थापित करना रहा है।

इस संस्था ने विदज में एक प्रयोगशाला स्थापित की है जहाँ दुग्ध एवं दुग्ध उत्पादों पर विश्लेषणात्मक कार्य चल रहे हैं। दुग्ध एवं उनके उत्पादों की गुणवत्ता निर्धारण के लिए कई विश्लेषणात्मक परीक्षण विधियाँ विकसित की गयी हैं। इस संस्थान ने दुग्ध निर्माण प्रक्रिया के मानकीकरण एवं मशीनीकरण की दिशा में काफी अनुसन्धान कार्य किये है।

दुग्ध उत्पादों; जैसे- श्रीखण्ड, गुलाबजामुन, पेड़ा, लस्सी, मट्ठा आदि का निर्माण उनकी स्वचालित पैकिंग प्रणाली (जिसमें लगातार पॉलिस्टीरीन रॉलिंग, फीलिंग एवं सीलिंग आते हैं) की नई प्रणालियाँ विकसित की गयी हैं। इसी प्रकार खोआ, पनीर, छेना, मिस्टी दही आदि के निर्माण की उत्कृष्ट विधियाँ विकसित की गयी हैं। इस प्रकार डेयरी अनुसन्धान के क्षेत्र में भी NDDB ने उत्कृष्ट कार्य किये हैं।

(3) भारतीय डेयरी निगम (Indian Dairy Corporation)—इसे संक्षेप में IDC भी कहते हैं। इसकी स्थापना फरवरी 1970 में की गयी। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य ऑपरेशन फ्लड के वाणिज्यिक भुगतानों (Commercial transactions) को व्यवस्थित करना था। भारतीय डेयरी निगम के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं-

(i) देश में डेयरी उद्योग का विकास एवं प्रोत्साहन करना।

(ii) राज्य सरकारों एवं दुग्ध व्यवसाय से जुड़ी सहकारी समितियों एवं निजी निकायों को सहयोग करना।

(iii) दुग्ध उत्पादन को बढ़ाने के उद्देश्य से संकर एवं उत्कृष्ट नस्लों के पशुपालन को प्रोत्साहित एवं विकसित करना।

(iv) शहरों में स्थापित डेयरियों के विकास एवं उनकी उत्पादन क्षमता बढ़ाने में मदद करना।

(v) दुग्ध उत्पादन बढ़ाना, दुग्ध संसाधन प्लान्ट्स की स्थापना, प्रशीतन केन्द्र विकसित करना तथा डेयरियों को पर्याप्त तकनीकी सुविधा उपलब्ध कराने में मदद करना।

(vi) स्किम दुग्ध पाउडर, बटर एवं अन्य दुग्ध उत्पादों के निर्माण एवं विपणन में सहयोग करना।

(4) राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम (National Co-operative Development Corporation, NCDC)—राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम (NCDC) की स्थापना 1972 में की गयी। यह सहकारी संस्थाओं द्वारा चालित परियोजनाओं के लिए योजना, प्रोत्साहन एवं वित्त उपलब्ध कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह सहकारी दुग्ध उत्पादक फैक्ट्री, दुग्ध संसाधन प्लान्ट एवं प्रशीतन केन्द्र आदि की स्थापना के लिए ऋण उपलब्ध कराता है। यह सहकारी डेयरी इकाइयों को मुफ्त तकनीकी सुझाव एवं परामर्श सुविधा की व्यवस्था भी करता है। इसका संघ कार्यालय नई दिल्ली में है तथा इसके सात क्षेत्रीय कार्यालय बंगलौर, कोलकाता, चंडीगढ़, गुवाहाटी, जयपुर, लखनऊ एवं पुणे में हैं। राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगन सहकारी इकाइयों को सीधे ऋण उपलब्ध कराता है, जिसमें केन्द्र या राज्य सरकार की गारन्टी की आवश्यकता नहीं होती।

(5) तमिलनाडु सहकारी दुग्ध उत्पादक संघ लिमिटेड (Tamilnadu Co-operation Milk Producers, Union Limited)—आविन तमिलनाडु सहकारी दुग्ध उत्पादक संघ लिमिटेड (टीएनसीएमपीएफएल), सहकारिता मंत्रालय, तमिलनाडु सरकार के स्वामित्व और टीएनसीएमपीएफएल के ट्रेडमार्क के तहत एक राज्य सरकार सहकारी है। आविन दूध खरीदता है, उसका प्रसंस्करण करता है और उपभोक्ताओं को दूध और दूध उत्पाद बेचता है।

कंपनी दूध, मक्खन, दही, आइसक्रीम, घी, मिल्क शेक, खोआ, चाय, कॉफी और चॉकलेट सहित अन्य उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला का उत्पादन करती है।

राज्य में दूध उत्पादन और वाणिज्यिक वितरण की देखरेख और विनियमन के लिए वर्ष 1958 में तमिलनाडु में डेयरी विकास विभाग की स्थापना की गई थी। डेयरी विकास विभाग ने दुग्ध सहकारी समितियों का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया। इसे वर्ष 1981 में तमिलनाडु सहकारी दूध उत्पादक संघ लिमिटेड द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। 1 फरवरी 1981 को, सहकारी की व्यावसायिक गतिविधियों को टीएनसीएमपीएफएल को सौंप दिया गया था जो ट्रेडमार्क 'आविन' के तहत दूध और दूध उत्पाद बेचता था। तमिलनाडु लगभग 14.5 मिलियन लीटर प्रतिदिन दूध उत्पादन के साथ भारत के अग्रणी राज्यों में से एक है और वर्तमान में इसके 1 करोड़ दैनिक उपभोक्ता हैं।

अप्रैल 2020 में, स्विगी ने अपने डेयरी और डेयरी उत्पादों की खुदरा बिक्री और बिक्री के लिए TNCMPFL के साथ साझेदारी की है, जिसे 'AAVIN' के नाम से जाना जाता है और इस समझ के अनुसार स्विगी चेन्नई शहर में 21 आउटलेट्स से आठ श्रेणियों में AAVIN उत्पादों की डोरस्टेप डिलीवरी करेगी। जुलाई 2020 में, AAVIN ने एक नई पहल में, पूरे तमिलनाडु में अपने 'मोबाइल एजेंट' के रूप में काम करने के लिए ऑटो और कॉल टैक्सी के ड्राइवरों को आमंत्रित किया था, जिससे उसे उम्मीद है कि इससे ड्राइवरों की कमाई में सहायता के अलावा उसके दूध उत्पादों की बिक्री भी बढ़ेगी। 2020 की कंपनी की रिपोर्ट के अनुसार, आविन एक दिन में लगभग 40 लाख लीटर दूध खरीदता है, जिसमें से 25 लाख लीटर दूध के रूप में बेचा जा रहा है, जबकि शेष को विभिन्न दूध उत्पादों जैसे स्किम्ड मिल्क पाउडर, बर्फ में परिवर्तित किया जा रहा है। क्रीम, छाछ, दही, घी और मक्खन। कंपनी ने 2019-20 के लिए ₹ 5800 करोड़ का वार्षिक कारोबार दर्ज किया और दूध की मासिक बिक्री ₹ 34.78 करोड़ से बढ़कर ₹ 41.15 करोड़ हो गई।

प्रश्न 6. डेयरी निर्माण क्षेत्र की संरचना और समस्या के बारे में विस्तार से बतलाइए।
Explain in detail about the structure and problems of dairy manufacturing sector.

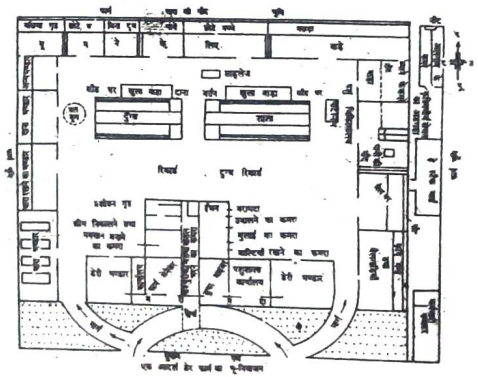
उत्तर-

डेयरी निर्माण क्षेत्र की संरचना

(1) सुरक्षित मकान–इस प्रकार के मकानों में पशुओं को एक स्थान पर बाँध दिया जाता है। यहीं पर वे चारा खाते तथा दूध देते हैं। बारनस में चारों तरफ दीवार होती है तथा इसके ऊपर छत होती है। दीवारों में उचित स्थानों पर खिड़कियाँ लगाई जाती हैं जिससे हवा का आवागमन अच्छी प्रकार हो सके।

इस प्रकार के मकानों में पशु तथा उनका प्रबन्ध करने वाला व्यक्ति वातावरण के बुरे प्रभाव से बचे रहते हैं। इस प्रकार के मकानों में पशु साफ-सुथरे रहते हैं तथा उनको बीमारियाँ भी कम लगती हैं। बारनस हिमालय के ठण्डे भाग में भी आसानी से बनाये जा सकते हैं और यहाँ पर ये काफी उपयुक्त होते हैं। गर्म जगहों पर बारनस नहीं बनाने चाहिए। खुले मकानों में पशुओं को रखने पर भी दूध निकालने के लिए बारनस बनाने जरूरी होते हैं।

(2) खुले मकान या बाड़े–इस प्रकार की व्यवस्था में जानवरों को खुली जगह में रखा जाता है। केवल दूध निकालने के समय ही उनको बारनस में रखा जाता है। इस प्रकार के मकानों में एक तरफ दीवार होती है, जिससे पशु हवा, गर्मी तथा सर्दी से बचें रहते हैं। इसमें सभी पशुओं के लिए पीने का पानी एक स्थान पर ही होता है। खाने के लिए भी एक बड़ी खोर या लम्बी नाँद (Manger) होती है। पशुओं को दाना केवल दूध निकालने के समय ही दिया जाता है और इस समय इनको बारनस में रखा जाता है। इस प्रकार के मकानों में सभी प्रकार के पशुओं को रखा जा सकता है। इस तरह के मकान देश में हिमालय के ठण्डे तथा ज्यादा वर्षा वाले भाग को छोड़कर अन्य सभी स्थानों के लिए उपयुक्त हैं। इस प्रकार के मकानों में, कभी-कभी अधिक वातावरण खराब होने की वजह से कुछ अन्य व्यवस्था करनी पड़ती है। इस प्रकार के मकान बनाने के लिए सस्ते पड़ते हैं तथा इनका फैलाव भी आसानी से किया जा सकता हैं। इस प्रकार के मकानों में ज्यादा जानवरों का प्रबन्ध कम व्यक्ति ही कर सकते हैं, क्योंकि चारा खाने तथा पानी पीने का स्थान सब पशुओं के लिए एक ही होता है। इस व्यवस्था में पशु सुख से रहते हैं, क्योंकि वे आसानी से इधर-उधर घूम-फिर सकते हैं।



चित्र–एक आदर्श डेरी फार्म का भू-नियोजन

आदर्श डेरी फार्म (Ideal Dairy Farm)

आदर्श पशुशाला के निम्नलिखित भवन होते हैं-

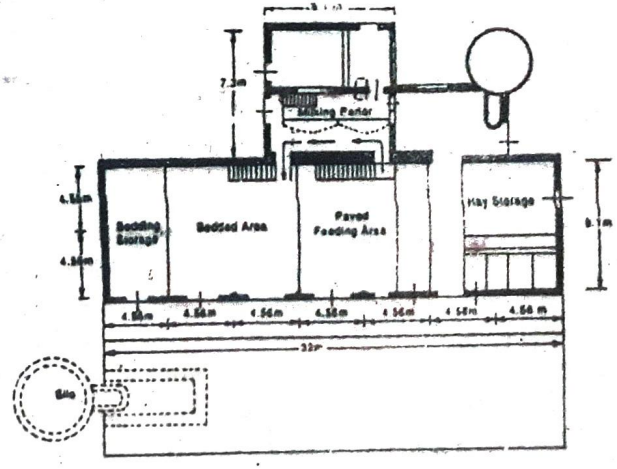
(1) बछड़ा गृह, (2) बछिया गृह, (3) ग्याभिन गाय गृह, (4) साँड़ गृह, (5) दुधारू गाय गृह, (6) सूखी गाय गृह।

आदर्श पशुशाला की विशेषतायें

(1) पशुशाला स्वच्छ होनी चाहिये।
(2) पशुशाला में हवा व रोशनी होनी चाहिये।
(3) पशुशाला में साफ पीने के पानी की पर्याप्त व्यवस्था हो।
(4) फर्श खुरदरा एवं पक्का हो जिससे पशु फिसलकर न गिरे।
(5) पशुशाला की नालियाँ कम गहरी व अधिक चौड़ी होनी चाहिये।
(6) आदर्श पशुशाला में प्रत्येक गाय-भैंस के लिए 60-70 वर्ग फीट स्थान होना चाहिये।
(7) चारे के लिए नादें व्यवस्थित हों।

पशुओं के लिए जगह की व्यवस्था

प्रत्येक पशु के रहने के लिए जगह की आवश्यकता तालिका में दी गई है। इसके अन्तिम खाने में ज्यादा से ज्यादा जानवरों को इस जगह में रखने की संख्या दी गई है, लेकिन आकस्मिक कारणों की वजह से थोड़े समय के लिए इस जगह में 10-15% पशु और रखे जा सकते हैं। केवल बड़ी जगह में ज्यादा पशु रखने के लिए व्यवस्था नहीं करनी चाहिए। अन्यथा ऐसी दशा में जो जानवर ताकतवर होंगे, कमजोर जानवरों को चारा-पानी नहीं लेने देंगे।



चित्र 1992–खुला बाड़ा

पशुओं के रहने के लिए जगह की आवश्यकता (प्रति पशु)

पशुओं का प्रकार	जगह की आवश्यकता वर्ग मी. में		एक जगह में
	बन्द जगह	खुली जगह	जानवरों की संख्या
साँड़	12.0	120.0	2
गाय	3.5	7.0	50
भैंस	4.0	8.0	50
ब्याने वाली गाय-भैंस	12.0	12.0	1
छोटे बच्चों के लिए	1.0	1.0	30
बड़े बच्चों के लिए	2.0	4.4	30

चारा तथा पानी के लिए जगह की आवश्यकता

पशुओं के लिए उपयुक्त रहने की जगह के अलावा उनके पीने के पानी तथा खाने के लिए चारे की अच्छी बड़ी नाँद होनी चाहिए, जिसमें पशु अच्छी तरह से चारा खा सकें और पानी पी सकें। चारे और पानी की नादें अलग-अलग होनी चाहिए।

आमतौर से सभी जानवर एक-साथ चारा खाते हैं, परन्तु वे सभी एक-साथ पानी नहीं पीते हैं। इसलिए खोर या नाँद की लम्बाई अधिक होनी चाहिए, जिससे सभी पशु उसमें एक साथ चारा खा सकें। खुले मकानों से खासतौर से इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जानवरों को चारा तथा पानी हर समय उपलब्ध रहे।

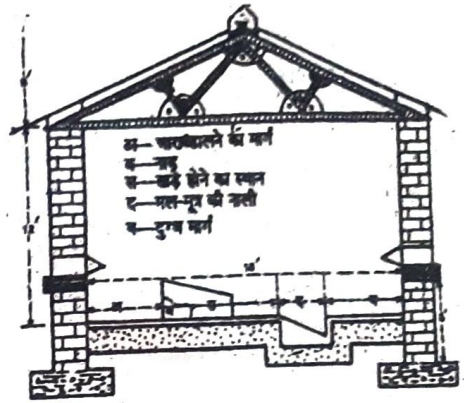
चारा तथा पानी के लिए जगह की आवश्यकता

पशु का प्रकार	जानवरों के लिए जगह (सेमी.)	100 जानवरों के लिए खोर की लम्बाई (सेमी.)	खोर तथा पानी पीने की नाँद		
			चौड़ाई (सेमी.)	गहराई (सेमी.)	ऊँचाई (सेमी.)
गाय-भैंस	60-75	6000-7500	60	40	50
छोटे बच्चों के लिए	40-50	4000-5000	40	15	20

पशुओं के समुचित आवास के लिए हमें पशुशालाओं के निर्माण करने के पूर्व निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए-

(1) पशुशाला की स्थिति—पशुशालाओं के निर्माण के पूर्व उसकी स्थिति के लिए पूर्व विचार कर लेना चाहिए। पशुशालाओं के लिए ऐसा स्थान चुनना चाहिए जो शहर के पास हो तथा सड़क के किनारे पर स्थित हो ताकि बाजार तक आना-जाना सुगमता से होता रहे तथा डेरी उद्योग सम्बन्धी आवश्यक वस्तुओं का क्रय-विक्रय किया जा सके। पशुशालायें मुख्य सड़क (Main road) के पास नहीं होनी चाहिए। इससे पशुओं की दुर्घटनायें तथा मोटरगाड़ियों की भयंकर आवाजों का भय रहता है। इसके अलावा बड़े-बड़े कारखानों के पास भी इन्हें नही बनाना चाहिए। पशुशाला के निकट श्रमिकों की उपलब्धता भी होनी चाहिए।

अत: पशुशालायें ऊँचे स्थान पर स्वच्छ वातावरण में बनानी चाहिए परन्तु बिजली, पानी का उचित प्रबन्ध होना आवश्यक है।



चित्र 1—इकहरे बाड़े की आड़ी काट

(2) पशुशाला की बनावट—पशुशालाओं का आकार पशुओं की संख्या के आधार पर निर्भर करता है। अत: अधिक पशुओं के लिए बड़ी तथा कम पशुओं के लिए छोटी शालाओं का निर्माण किया जाता है।

अत: पशुशालाएँ मुख्यत: दो प्रकार की होती हैं-

(i) एक लाइन वाली पशुशाला (Single row shed)—इस पद्धति में पशु एक ही पंक्ति (line) में बाँधे जाते हैं। यह पद्धति उन स्थानों के लिए अधिक प्रचलित है जहाँ पर पशुओं की संख्या कम होती है। 15 से 20 पशुओं के लिए ही यह शाला उपयुक्त है। इस प्रकार की पशुशालायें अधिक स्थान घेरती हैं और बहुत-सा स्थान बेकार पड़ा रहता है। इसकी आकृति का नमूना निम्न प्रकार है-

एक लाइन वाली पशुशाला के गुण व दोष

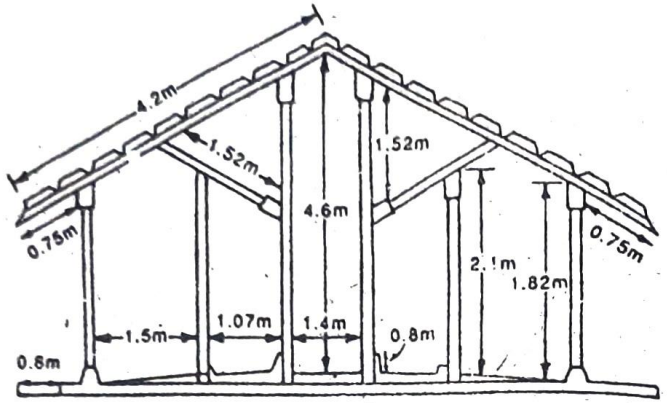
गुण (Merits)—इस पद्धति में निम्नलिखित लाभ हैं-

(1) इनमें पशुओं को पूर्ण आराम मिलता है।
(2) वायु का आवागमन सुचारू रूप से होता है
(3) प्रत्येक पशु को पर्याप्त स्थान मिल जाता है।
(4) सफाई आदि सुगमता से होती हैं।
(5) देखने में अच्छी लगती है।

दोष (Demerits)—इस पद्धति में निम्नलिखित दोष हैं-

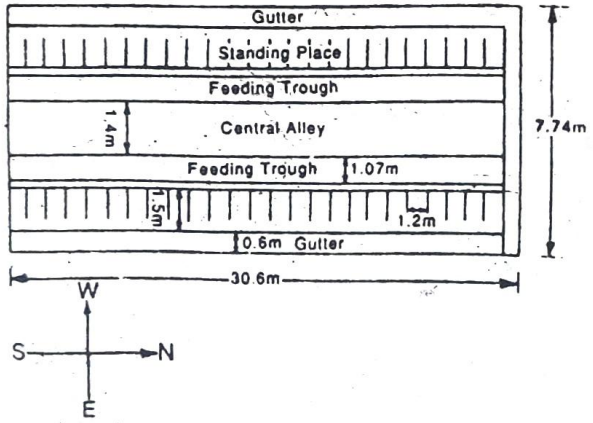
(1) इसमें स्थान अधिक घिरता है।
(2) इसका उपयोग कम पशुओं के लिए होता है।
(3) इस पद्धति में व्यय अधिक होता है।

(ii) दो लाइनों वाली पशुशाला (Double row shed)—पशुओं की अधिक संख्या होने पर इस पद्धति का प्रयोग उत्तम रहता है क्योंकि इसमें पशुओं को दो लाइनों में बाँधा जाता है। इस प्रकार स्थान की बचत हो जाती है। इस प्रकार की पशुशाला में दोनों कतारों में लगभग 80-100 पशुओं को बाँधा जा सकता है। इससे अधिक संख्या होने पर दूसरी पशुशाला बनाना उचित रहता है। यह पद्धति अधिक उपयोगी भी होती है। इस प्रकार की पशुशालाओं में पशु दो ढंगों से बाँधे जाते हैं-



चित्र–मुँह से मुँह पशुशाला का क्रॉस सेक्शन

(अ) आमने-सामने की पद्धति (Face to Face System)–इस पद्धति में पशु एक-दूसरे की तरफ मुँह करके बाँधे जाते हैं। दोनों लाइनों के लिए चारा डालने का रास्ता एक ही रखा जाता है। रास्ते के दोनों ओर नाँद (mangers) बनाई जाती है। नादों के विपरीत दिशा में मूत्र नालियाँ बनाई जाती हैं। पशुओं को खड़े होने के लिए 1.5 मीटर स्थान छोड़ा जाता है। इस पद्धति की आकृति का नमूना निम्न प्रकार है-



चित्र–मुँह से मुँह पशुशाला का ऊपर से दृश्य

पद्धति के गुण एवं दोष

गुण (Merits)–

(1) आमने-सामने मुँह रहने से पशुओं के मुँह से निकली भाप (साँस) एक-दूसरे के मुँह में चली जाती है।

(2) पशुओं में बीमारी फैलने का भय रहता है।

(3) गोबर-पेशाब के छींटों से दीवारें खराब होती हैं।

(4) दूध निकालते समय ग्वालों को एक बार में नहीं देख सकते हैं।

(5) सफाई करने में अधिक समय लगता है।

(ब) पूँछ से पूँछ की पद्धति (Tail to tail system)–इस पद्धति में पशुओं का मुँह विपरीत दिशा में होता है, परन्तु पूँछ (पिछड़ा) एक-दूसरे के सामने रहती है। आमने-सामने की पद्धति से यह पद्धति अच्छी होती है। यही विधि अच्छे व राजकीय डेरी फार्मों पर अपनाई जाती है। यह उपरोक्त विधि के ठीक विपरीत है। अत: इसमें मध्य में सफाई करने का रास्ता होता है जिसके द्वारा दोनों ओर की मूत्र नलिकाओं को साफ किया जाता है, चारा डालने के लिए पर्याप्त रास्ता दोनों ओर होता है।

पूँछ से पूँछ पद्धति के गुण-दोष

गुण (Merits)–

(1) पशुओं की साँस एक-दूसरे पशु के मुँह में नहीं जा पाती है।

(2) सफाई करने में सुगमता रहती है।

(3) छूत की बीमारियाँ एक-दूसरे को नहीं लग पाती हैं।

(4) पशुओं को पर्याप्त स्थान मिल जाता है

(5) एक ही समय में दोनों कतारों में काफी ग्वालों पर निगाह रख सकते हैं।

(6) बीचों-बीच मार्ग में से दूध ले जाने व सफाई करने में सुविधाजनक होता है।

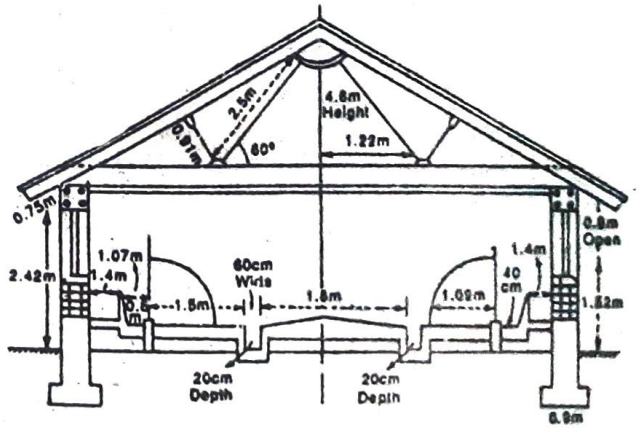
दोष (Demerits)–

(1) दूध निकालने के स्थान पर अँधेरा रहता है।

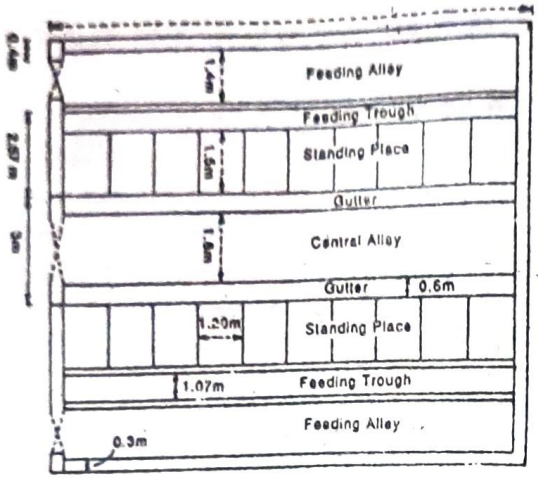
(2) सफाई आदि करने में पशु के लात मारने का भय रहता है।

(3) दाना-चारा डालने में अधिक समय लगता है।

उपरोक्त दोनों पद्धतियों के गुण-दोषों को देखते हुए यह पद्धति अधिक उपयोगी है।



चित्र–पूँछ से पूँछ प्रणाली का क्रॉ सेक्शन



चित्र–पूँछ से पूँछ पशुशाला का ऊपर से दृश्य

(i) बच्चों के लिए रहने का स्थान (Calf space)–डेरी फार्मों पर पशुओं को जिस प्रकार व्यवस्थित पशुशालाओं में रखा जाता है ठीक उसी प्रकार बच्चों के रहने के लिए अलग से स्थान (बाड़ा) बनाया जाता है। यह काफी विकसित एवं बड़ा होता है जिसमें बच्चे अच्छी तरह घूम-फिर सकते हैं। इन बाड़ों की आकृति पशु बच्चों की संख्या पर निर्भर करती है। आमतौर पर 3 × 3 फुट आकृति वाले बाड़े में 5 बच्चों को सुगमतापूर्वक रख सकते है और बच्चों की संख्या में वृद्धि होने पर बाड़े के आकार को बढ़ाया जा सकता है।

खाने के लिए बच्चों को पशुशालाओं में ही रखते हैं, परन्तु बछड़ों के लिए एक पशुशाला अलग से रखते हैं। छोटे-छोटे बच्चों के आपस में लड़ने के कारण उन्हें उम्र के अनुसार अलग-अलग रखते हैं।

(1) 1-3 माह के बच्चे एक समूह में।

(2) 3-6 माह के बच्चे दूसरे समूह में।

(3) 6 माह से ऊपर के बच्चों को तीसरे समूह में रखा जाता है।

(ii) साँड़ का निवास स्थान (Bull shed)–पशुशाला में साँड़ को अन्य पशुओं के साथ नही रखना चाहिए बल्कि उसके लिए एक बाड़े का अलग से प्रबन्ध होना चाहिए जिसमें वह घूम-फिर सके। एक साँड़ के लिए 18 × 20 मीटर के आकार का बाड़ा पर्याप्त होता है । इसी के किनारे पर एक पशुशाला 3 × 3 मीटर की बनानी चाहिए जिसमें साँड़ के खाने व पीने की नाँद का अलग-अलग प्रबन्ध होना चाहिए। साँड़ का बाड़ा स्वच्छ स्थान पर होना चाहिए।

(3) पशुशाला में जल निकास (Drainage in shed)–पशुशालाओं की नालियाँ पशुओं के मलमूत्र आदि साफ करने में सहायक होने के साथ-साथ स्वच्छ उत्पादन में भी सहायक सिद्ध होती हैं। अत: ये नालियाँ चौड़ी व ढालदार होनी चाहिए जिसमें गोबर, मूत्र,

बिछावन, भूसा आदि खाद के गड्ढों में बहकर सरलता से जा सके। ये नालियाँ तथा गड्ढे सीमेण्ट से निर्मित करना चाहिए। नालियाँ 6.10 सेमी. चौड़ी तथा 1.26 सेमी. गहरी होनी चाहिए। ये नालियाँ एक बड़ी नाली के द्वारा खाद के गड्ढों तक जाती हैं। इनकी ढाल खाद के गड्ढे की ओर होना चाहिए।

(4) पशुशालाओं में हवा का आवागमन (Ventilation in shed)–पशुओं के अच्छे स्वास्थ्य के लिए उचित मात्रा में वायु का आवागमन होना अति आवश्यक है जिससे बीमारी का प्रकोप नहीं होने पाता है। प्राय: पशुशालाओं में गोबर आदि के कारण गन्दी वायु रहती है जिसमे बीमारी फैलने का भय रहता है। अत: शुद्ध वायु का आवागमन आवश्यक है

अत: पशुशाला में ताजी वायु के आवागमन के लिए नीचे-ऊपर छेद (वेण्टीलेशन) का उचित प्रबन्ध करना होता है ताकि पशुशालाओं में वायु का सन्तुलन बना रहे। प्रयोग द्वारा ज्ञात किया गया है कि एक गाय को 704 घन मीटर वायु प्रति घण्टे आवश्यक होती है जिसका आयतन लगभग 200 वर्ग इंच होता है। वायु (हवा) दरवाजे द्वारा आ सकती है।

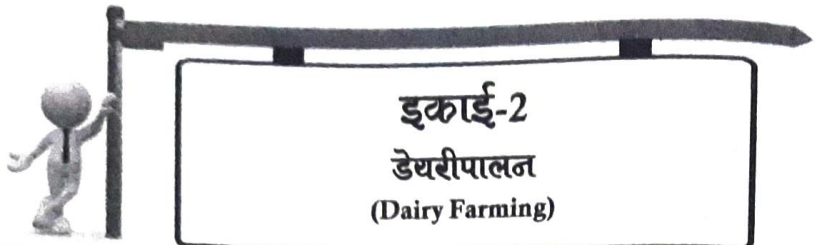
(5) पशुशालाओं का फर्श (Floor of the shed)–पशुशाला का फर्श पक्का होना चाहिए। कच्चा फर्श शीघ्र खराब हो जाता है तथा सफाई में बाधा पड़ती है। अत: सीमेण्ट का फर्श बनाना चाहिए क्योंकि ईंटों का फर्श अधिक टिकाऊ नहीं होता है। कुछ लोग पत्थर का फर्श बनाते हैं, जिसमें पशुओं के फिसलने का डर रहता है। अत: कंक्रीट सीमेण्ट का फर्श सबसे उत्तम माना जाता हैं।

फर्श का ढाल जानवरों की नाँदों की तरफ से मूत्र नालियों की तरफ होना चाहिए जिसमें मूत्र आदि आसानी से नाली के बाहर जा सके। नाँदों की तरफ से नाली की ओर यह ढाल 127 मिमी. होना चाहिये। इससे अधिक ढाल होने पर पशुओं को खड़े होने में परेशानी हो सकती है। ढालदार फर्श पानी से धोया जा सकता है क्योंकि गन्दा पानी नाली की ओर बह जाता है।

(6) पशुशाला सम्बन्धित अन्य भवनों का निर्माण–पशुशाला से सम्बन्धित अन्य भवनों का निर्माण किया जाता है; जैसे-भूसा रखने, दाना रखने के अलग-अलग कमरे तथा चारा काटने की मशीन व तौलने का कमरा तथा अन्य आवश्यक यन्त्र तथा औजार रखने का कमरा आदि।

उपरोक्त सभी कमरे पशुशाला के पास होने चाहिये जिससे पशुशाला तथा खाने-पीने की सामग्री भेजने में श्रम का व्यय कम से कम हो।

■■■



इकाई-2

डेयरीपालन

(Dairy Farming)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

प्रश्न 7. भैसों की देशी तथा विदेशी नस्लों को बतलाइए।

Describe the indigenous and foreign breeds of buffaloes.

उत्तर-

भारत में पायी जाने वाली भैसों की प्रमुख नस्लें

1. मुर्रा नस्ल (Murah Breed)—यह भैंस की सबसे महत्वपूर्ण नस्ल है। इसका मूल स्थान दिल्ली राज्य एवं पंजाब का दक्षिणी क्षेत्र है। इसके अलावा हरियाणा, रोहतक, हिसार, गुड़गाँव जिलों, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, करनाल तथा पटियाला नामक रियासतों में पाली जाती हैं।

रंग एवं आकार (Colour & Size)—इस नस्ल के पशु काले स्याह रंग के होते हैं परन्तु मुँह, पैर तथा पूँछ पर सुनहरे रंग के बाल पाये जाते हैं।

इस नस्ल के पशुओं का सिर छोटा तथा भैंसे में स्थूल तथा भारी (Coarse & heavy) होता है। माथा थोड़ा-सा चौड़ा तथा कान छोटे व पतले होते हैं। मादाओं के विशिष्ट चंचल और चमकीले नेत्र तथा चमकदार मुड़े हुए सींग होते हैं। सींग छोटे और अन्दर की ओर मुड़े छल्लेदार होते हैं।

गलकम्बल तथा ककुद का अभाव होता है। पैर सीधे तथा खुर काले रंग के होते हैं। पतली मुलायम त्वचा जिस पर कम बाल होते हैं। शरीर के आकार की अपेक्षा गर्दन व सिर हल्के होते हैं। मादा का अयन सुविकसित तथा उभरी व स्पष्ट दुग्ध शिरायें होती हैं।

उपयोगिता—यह नस्ल, दूध और घी के लिए पाली जाती हैं। यह नस्ल साहीवाल गाय की नस्ल के समान विशेष प्रसिद्ध है। यह नस्ल एक ब्यांत में लगभग 1,360 से 2,100 किग्रा. तक दूध देती है। अधिकतम दुग्ध उत्पादन 5,450 किग्रा. प्रति ब्यांत है। इनके दूध में औसतन 7% वसा होती है। औसत दुग्ध उत्पादन 6.8 किग्रा. प्रतिदिन का है, परन्तु अच्छी भैंस 25.8 किग्रा. तक दूध प्रतिदिन देती है।

मुर्रा नस्ल के पशु की नाप एवं वजन

पशु	ऊँचाई (सेमी.)	लम्बाई (सेमी.)	परिधि (सेमी.)	वजन (किग्रा.)
भैंस	133	149	220	450
भैंसा	142	150	224	550

2. भदावरी नस्ल (Bhadawari Breed)—इसका मूल स्थान बाह तहसील के अन्तर्गत भदावर स्थान है जो आगरा जिले में स्थित है। इसके अलावा इटावा जिला तथा भूतपूर्व ग्वालियर राज्य में भी बहुतायत से पाली जाती है।

रंग / एवं आकार (Colour & Size)—इस नस्ल के पशु के शरीर का रंग ताँबा जैसा होता है जिस पर बादामी रंग के कुछ बाल पाये जाते है जो जड़ों में काले होते हैं।

इस नस्ल का छोटा सिर जो सींगों के मध्य उभरा-सा होता है। छोटे-छोटे मजबूत पैर एवं उसके खुर काले होते है। चपटे ठोस, मध्यम मोटाई के सींग जो पीछे की ओर मुड़कर बाद में ऊपर की ओर मुड़े हुए होते हैं। सींग की आकृति हँसिये या तलवार जैसी होती है। अयन की दुग्ध शिरायें उभरी होती हैं परन्तु अयन कम विकसित होता है।

उपयोगिता—इस नस्ल की भैंस औसतन 3.5-5 किग्रा. दूध प्रतिदिन देती है। प्रति ब्यांत औसतन दुग्ध उपज 1,250 किग्रा. है। दूध में वसा अधिक (लगभग 13%) निकलती है। दूध में इतनी अधिक वसा अन्य किसी भैंस की नस्ल में नहीं होती है। अधिकतर इस नस्ल को घी बनाने के उद्देश्य से पाला जाता है।

इस नस्ल के भैंसे अन्य नस्लों की अपेक्षा अधिक गर्मी सहन कर लेते हैं। अत: कृषि कार्य के लिए अधिक उपयोगी हैं।

3. जाफराबादी नस्ल (Jaffarabadi Breed)—इस नस्ल का जन्म स्थान जाफराबाद एवं दक्षिण काठियावाड़ के निकटवर्ती भागों में है। इस नस्ल के शुद्ध अवस्था वाले पशु काठियावाड़ के गिर जंगल में पाये जाते हैं।

रंग एवं आकार (Colour & Size)—इस नस्ल के पशुओं का रंग काला होता है। शरीर लम्बा तथा सिर गर्दन मुर्रा नस्ल से भारी होता है, माथा उभरा हुआ होता है। सींग गर्दन के साथ नीचे झुककर ऊपर उठे हुए तथा गोलाई में होते है। अयन व दुग्ध शिराएँ पूर्ण विकसित होती हैं।

उपयोगिता—दुग्ध उत्पादन तथा घी के उद्देश्य से इस नस्ल के पशु मुख्य रूप से पाले जाते हैं। इस नस्ल का औसतन दूध उत्पादन 12 किग्रा. प्रति भैंस हैं। परन्तु अच्छी नस्लें 15-18 किग्रा. दूध देती हैं। दुग्ध वसा 7-8% होती है।

प्रति ब्यांत औसत दूध उपजे 2,400 किग्रा. है। इस नस्ल के भैंसे भारी बोझा खींचने में प्रयोग किये जाते हैं।

4. तराई नस्ल (Tarai Breed)—इस नस्ल के पशु उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र में विशेषकर टनकपुर तथा रामनगर में मुख्य रूप से पाले जाते हैं। ये पशु जंगलों में चरकर अपना पेट भरते हैं।

रंग एवं आकार (Colour & Size)-काला तथा भूरा रंग होता है। माथे पर प्राय: सफेद धब्बा होता हैं साधारणत: शरीर बड़ा, सिर मध्य से उभरा हुआ तथा आँखों के नीचे थोड़ा-सा गड्ढा होता है। लम्बे सींग जो कि आड़े होते हैं, किनारो पर ऊपर मुड़े होते हैं।

उपयोगिता—यह भैंस बहुत कम दूध देती है। प्रतिदिन लगभग 2-3 किग्रा. दूध देती है। पूरे ब्यांत लगभग 450-500 लीटर (300 दिन में) किग्रा. दूध देती है। परन्तु इस

नस्ल की विशेषता यह है कि तराई क्षेत्र की जलवायु (अस्वास्थ्यकर) सहन करने की क्षमता रखते हैं ताकि कम दाने चारे में अपना निर्वाह कर लेते हैं।

5. नागपुरी नस्ल या इलिचपुरी नस्ल (Nagpuri Breeds)—यह नस्ल मुख्य रूप से महाराष्ट्र के नागपुर, वर्धा तथा बराड़ जिलों में पाली जाती है। इसे अलावा मध्यप्रदेश, उभारदा तथा बाईराम क्षेत्र में पाई जाती है।

रंग एवं आकार (Colour & Size)—काला रंग तथा चेहरे व पैरों पर सफेद धब्बे पाये जाते हैं। सींग लम्बे, चपटे, मुड़े हुए, गर्दन के दोनों ओर पीछे की ओर को कन्धों को छूते हुए झुके रहते हैं।

उपयोगिता—इस नस्ल की भैंस 5.5-6 किग्रा. दूध प्रतिदिन देती है। इस नस्ल के भैंसे का भारी वाहन चलाने में प्रयोग किया जाता है।

6. नीली नस्ल (Nili Breeds)—इसका जन्म स्थान पंजाब की सतलज घाटी विशेषकर फिरोजपुर जिला तथा मोन्टगोमरी (पाकिस्तान) जिला है।

परन्तु उत्तर प्रदेश के बरेली, रामपुर, मुरादाबाद तथा नैनीताल जिलों में अधिक संख्या में पाई जाती है।

रंग एवं आकार (Colour & Size)—रंग काला तथा बादामी होता है। माथे पर सफेद चाँद तथा चेहरे, थूथन व टाँगों पर सफेद धब्बे पाये जाते हैं। ये भारी शरीर वाले होते हैं।

सिर छोटा उठा हुआ तथा माथा धँसा हुआ होता है। छोटे व मोटे सींग जो मुड़े हुए होते हैं। मादा पशुओं की आँखें चमकीली तथा पूँछ लम्बी होती है।

उपयोगिता—ये भैंसे दूधारू होती हैं और एक ब्यात (250 दिन) में औसतन 1600-1700 किग्रा. दूध उत्पादित करती हैं तथा इसके दूध में लगभग 10% से अधिक वसा पाई जाती है। इस प्रकार यह नस्ल मुर्रा से उत्तम है।

इसके भैंसे शक्तिशाली होते हैं जो बोझा ढोने के लिए प्रयोग किये जाते हैं।

7. मेहसाना नस्ल (Mehsana Breed)—यह नस्ल मुख्यत: उत्तर गुजरात के मेहसाना जिला तथा उसके निकटवर्ती भागों में पाई जाती है। यह मुर्रा तथा सूरती नस्लों के मध्य की नस्ल है। अहमदाबाद में दूध के लिए इस नस्ल के पशु अधिक संख्या में पाले जातें हैं।

रंग एवं आकार (Colour & Size)—पशुओं का रंग काला होता है। इस नस्ल के पशुओं का चौड़ा माथा तथा मध्य में गड्ढा-सा होता है। चेहरा लम्बा, सीधा तथा थूथन चौड़ी और आँखें चमकीली होती हैं। मध्य आकार के नोकदार कान तथा स्तन काफी मोटे-मोटे लम्बे होते हैं। अयन मुर्रा के समान होता है।

उपयोगिता—यह भैंस दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से अधिक प्रसिद्ध है। ये अधिक समय तक दूध देती है। एक ब्यांत (300 दिन) में 1,350 से 1,800 किग्रा. तक दूध देती है। इस जाति के पशु बाँधकर पाले जाते हैं। इसके (बच्चे) पशुओं की अच्छी देखरेख न होने पर शीघ्र (male calves) मर जाते हैं।

8. सूरती नस्ल (Surati Breed)—इसका मुख्य स्थान गुजरात का चरोत्तर तथा बड़ौदा का पार्श्वीय क्षेत्र है। परन्तु शुद्ध वंशीय पशु आनन्द, वसाड़, खेड़ा तथा नड़ियाद क्षेत्र में मिलते हैं।

रंग एवं आकार (Colour & Size)—इसका रंग साधारणत: काला या भूरा होता है परन्तु कुछ विशेष पशुओं में सफेद रंग की दो पट्टियों पाई जाती हैं। एक जवड़े के चारों ओर तथा दूसरी अधर वक्ष के चारों ओर इस नस्ल के पशु मध्यम आकार, मझौला कद तथा पेट आगे को निकला, पीछे कम होता है। लम्बा-चौडा सिर जो सींगों के मध्य गोलाकार होता है। सींग मध्यम लम्बाई के तथा चपटे एवं हँसिये की आकृति के होते हैं। यह भैंस देखने में सुन्दर होती है।

उपयोगिता—दूध और मक्खन प्राप्त करने के लिए यह नस्ल पालना आर्थिक दृष्टि से लाभकर होता है। 300 दिन की ब्यांत में औसत दुग्ध उत्पादन 2,200 से 3,400 किग्रा. हुआ है। इसके दुग्ध में लगभग 7.5% वसा पाया जाता है। नर कृषि कार्य में उपयोगी हैं।

9. टोड़ा नस्ल (Toda Breed)—इस नस्ल की भैंस नीलगिरि पहाड़ के प्लेटू में बहुतायत से पाई जाती है। इस क्षेत्र के निवासी इन पशुओं को बड़े शौक से पालते हैं।

रंग एवं आकार (Colour & Size)—इस नस्ल की भैंस का रंग काला अथवा भूरा होता है। पशुओं की गर्दन एवं पीठ पर घने बाल उगे हुए होते हैं। इस कारण पशुओं की सूरत डरावनी हो जाती है। इसका सिर बड़ा एवं भारी होता है। वक्ष चौड़ा तथा गहरा होता है। टाँगें छोटी एवं अधिक मजबूत होती हैं।

उपयोगिता—भैंस अधिक दुग्ध देती है। इनका औसतन दैनिक दुग्ध उत्पादन प्रति भैंस 6-7 लीटर होता है। दुग्ध में वसा की मात्रा हमेशा लगभग 6 और 8% के बीच होती है। दुग्ध की सुगन्ध आकर्षक होती है। इस नस्ल के भैंसे प्राय: प्रजनन कार्य के लिए ही प्रयोग किये जाते हैं।

10. रावी नस्ल (Ravi Breed)—इस नस्ल के पशु पंजाब की रावी नदी की घाटी में पाले जाते हैं, विशेषरूप से सन्दलवार क्षेत्र में। इस नस्ल के पशुओं को अधिकतर चलवासी प्रजनन के लिए रखते हैं।

रंग एवं आकार (Colour & Size)—इस नस्ल के पशुओं का रंग गहरा काला अथवा भूरा होता है। सिर अधिक बड़ा, मस्तक चौड़ा तथा सींग भारी घुमावदार होते हैं। अयन पूर्ण विकसित होता है विशेष रूप से सन्दलवार क्षेत्र में। गर्दन लम्बी, मोटी एवं भारी होती है। पूँछ अधिक लम्बी एवं सफेद बालों के गुच्छे वाली, टखनों तक लटकने वाली होती है। पशु भारी-भरकम शरीर वाले होते हैं।

उपयोगिता—इस नस्ल के पशु अधिक दूध देने के लिए प्रसिद्ध हैं। औसतन दैनिक दुग्ध उत्पादन प्रति भैंस लगभग 7 लीटर होता है लेकिन भली प्रकार के पालन-पोषण से एक दिन में 15 लीटर दूध दे देती है। एक ब्यांत में 1,800-2,200 लीटर दूध दे देती है। भैंस का औसत भार लगभग 420 किग्रा. होता है। भैंसे (नर) कृषि कार्य के लिए अधिक उपयोगी नहीं होते।

प्रश्न 8. गाय की प्रमुख देशी नस्लों का वर्णन कीजिए।
Describe the major indigenous breeds of Cows.

उत्तर-

गाय की प्रमुख देशी नस्लें

(A) दुधारू नस्लें–

(1) साहीवाल नस्ल (Sahiwal Breeds)–इस नस्ल का स्थान पाकिस्तान का मोंटगोमरी जिला है। इसलिए इस नस्ल को मोंटगोमरी नाम से भी पुकारते हैं। इस नस्ल के पशु पंजाब के शुष्क, मध्यवर्ती और दक्षिणी क्षेत्रों में बहुत अधिक संख्या में पाले जाते हैं। यह नस्ल पंजाब, हरियाणा, देहली, यू. पी., बिहार, म. प्र., पश्चिमी बंगाल के अनेकों सरकारी एवं प्राइवेट फार्मों पर पाली जाती है।

रंग एवं आकर (Colour and Size)–इस नस्ल के पशु लाली लिए हुए धुँधले काले रंग के तथा कुछ सफेदी लिए हुए, परन्तु अधिकांश गहरे लाल रंग के होते हैं। कुछ गहरे भूरे व काले रंग के होते हैं।

इस नस्ल के पशुओं का शरीर सममित (Symmetrical) होता है अर्थात् शरीर लम्बा, कद व टाँगे छोटी व माँसल होती हैं। पशु के सींग छोटे-मोटे (लगभग 7-8 सेमी. लम्बे), माथा चौड़ा तथा शरीर भारी होता है। खाल चिकनी व ढीली होती है। इसलिए इसे लोला नस्ल कहते हैं। नर पशुओं का कूबड़ा या ठाँटा बड़ा तथा नितम्बी मुतान (Pendulous sheath) होता है। इनका गलकम्बल लम्बा, भारी व लटकता हुआ जमीन को छूती हुई काली गुच्छेदार पूँछ, मादा का अयन, बड़ा, फैला, कुछ लटका, समान आकार के थन की दुग्ध शिरायें स्पष्ट तथा लम्बी होती हैं।

उपयोगिता–साहीवाल नस्ल की गायें बहुत दुधारू होती हैं। गाँवों में ये एक ब्यांत में औसतन 1,360 किलो. दूध देती हैं, परन्तु राजकीय फार्मों पर इस नस्ल की गायों का औसत दुग्ध उत्पादन एक ब्यांत (300 दिन के) 2,200- 2,500 क्रिगा रहा है। इस नस्ल की कुछ विशिष्ट गायों ने एक ब्यांत में 4,550 किया. से अधिक दूध दिया है। दूध में वसा की मात्रा 4 से 5% तक होती है।

इस नस्ल के बैल कृषि कार्य में सुस्त रहते हैं तथा कठिन कार्य से डरते हैं।

(2) सिन्धी नस्ल (Sindhi Breed)–इस नस्ल को लाल सिन्धी (Red Sindhi) के नाम भी पुकारते हैं। इस नस्ल का मूल स्थान पाकिस्तान में स्थित सिन्ध प्रदेश है। इस नस्ल का असली प्रजनन क्षेत्र (Real Breeding Tract) कोहिस्तान नामक भाग में है। लेकिन इस जाति के पशु करांची तथा हैदराबाद क्षेत्र में बहुतायत से पाये जाते हैं। सिन्ध प्रदेश के पश्चिमी भाग में इस नस्ल के शुद्धवंशीय पशु अधिक मात्रा में मिलते हैं। भारत में प्रमुख फार्मों पर ये पशु मिलते हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)–इस नस्ल के पशुओं का रंग गहरा लाल (deep dark red) तथा पीले (dun yellow) से गहरे कत्थई (dark brown) रंग का होता है, परन्तु साँड़ों का रंग अधिक गहरा होता है। पैरों के अगले भाग काले होते है।

ये पशु मध्यम आकार के होते हैं तथा शरीर ठोस (compact) होता है। पशुओं का सिर सामान्य आकार का होता है। इसके सींग मोटे तथा छोटे होते हैं तथा अन्त में मुड़े हुए कान नीचे की तरफ झुके होते हैं। ठाँटा बड़ा तथा अयन लटका हुआ-सा रहता है। गायों का रूप फनाकार (wedge shaped) होता है। गाय का भार लगभग 340 किलोग्राम तथा साँड़ का वजन 480 किग्रा. होता है।

उपयोगिता–दूध देने वाली गायों में सिन्धी नस्ल की गाय बहुत प्रसिद्ध है। एक ब्यांत (300 दिन के) में औसतन दुग्ध उत्पादन 1,815 क्रिगा. (फार्मों पर) है तथा विशिष्ट गायों ने 5,450 क्रिगा. तक (एक ब्यांत, में) दूध दिया है। सीधी होने के कारण फार्मों पर अधिक पाली जाती है। दुग्ध वसा 4.5% होती है।

इस नस्ल के बैल छोटे आकार के होने पर भी भारवाही पशुओं के रूप में बहुत कार्य करते हैं तथा नस्लें सुधारने के काम में लाये जाते हैं।

(3) गिर (गुजरात) नस्ल (Gir breed)–इस नस्ल का उद्भव दक्षिणी काठियावाड़ के गिर जंगलों में हुआ है। इसीलिए इसको काठियावाड़ी, सूखी व देशान नाम से पुकारते हैं। राजकीय फार्मों पर इस नस्ल के पशु प्रजनन के लिए अधिक पाले जाते हैं। यह भारत की अच्छी एवं प्राचीन नस्ल है। यह जूनागढ़ स्टेट, मुम्बई, बंगलौर तथा बड़ौदा क्षेत्र में पाई जाती है।

रंग एवं आकार (Colour and Size)–इस नस्ल की गायों का रंग धब्बेयुक्त लाल होता है अर्थात् चितकबरा रंग होता है, परन्तु लोगों की पसन्द का रंग सफेद है जो लाल व कत्थई रंग के धब्बेयुक्त होता है। काले रंग के पशु भी देखने को मिलते हैं।

इस नस्ल के पशुओं का शरीर सुव्यवस्थित एवं गठीला होता है। इनका माथा चौड़ा तथा उभरा हुआ-सा होता है। सींग टेढ़े पीछे की ओर सिर पर मुड़े हुए होते हैं। कान लम्बे तथा ऐंठे होते हैं। ये मुड़ी पत्ती के समान होते हैं। ठाँटा काफी उभरा हुआ विकसित तथा गलकम्बल मध्यम आकार का होता है।

उपयोगिता–इस नस्ल की गायें गाँवों में 300 दिन की अवधि में औसतन 907 किग्रा. दूध देती हैं परन्तु राजकीय फार्मों पर इस नस्ल का औसतन दुग्ध उत्पादन (1,500-2,500) किग्रा. होता है। इसके दूध में औसतन 4.5% चिकनाई होती है।

बैल अधिक बलवान होते हुए भी सुस्त एवं आलसी होते हैं, परन्तु भारवाही पशुओं के रूप में इनका प्रयोग अधिक होता है।

(4) देवनी गाय (Deoni breed)–यह एक साधारण नस्ल की गाय है, परन्तु यह सामान्य गुणों में गिर से मिलती-जुलती है। इसका मूल स्थान हैदराबाद (दक्षिण) राज्य की उत्तर-पश्चिमी तथा पश्चिमी क्षेत्र में है। इस नस्ल के पशु देवनी पशु-वंशीय फार्म, उदयगिरि (केड़ाल) में रखे गये हैं। यह दूध के लिए अच्छी मानी जाती है।

रंग एवं आकार (Colour and Size)–इस नस्ल के पशुओं के शरीर पर गिर की भाँति धब्बे पाये जाते हैं। काला एवं सफेद रंग मुख्य है, परन्तु लाल सफेद रंग के पशु मिलते हैं।

सिर मध्यम आकार का, माथा उभरा हुआ होता है। छाती गहरी तथा पसलियाँ महराबदार होती है। पीठ सीधी, पुट्ठे तथा पैर मजबूत होते हैं। छोटे-छोटे कान लटकते हुए तथा सींग मुड़े हुए होते है। झालर विकसित होती है।

उपयोगिता—देवनी नस्ल की गायें एक ब्यांत (300 दिन में) 790 किग्रा. दूध देती हैं, परन्तु फार्मों पर ये गायें औसतन 1,700 किग्रा. दूध देती हैं। दुग्ध में वसा 5% तक होती है।

इस नस्ल के बैल भारी काम के लिए उपयुक्त होते हैं।

(B) द्विप्रयोजनी नस्लें (Double Purpose Breeds)

(1) हरियाणा नस्ल (Hariyana breed)—यह नस्ल भारत की अधिकतम महत्वपूर्ण नस्लों में से एक है और सारे देश में दुकाजी नस्ल के रूप में प्रसिद्ध है। इस नस्ल का जन्म स्थान हरियाणा है जिसमें रोहतक, हिसार, करनाल और गुड़गाँव जिले सम्मिलित हैं। इसके अलावा सम्पूर्ण दिल्ली राज्य, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के अलवर तथा भरतपुर आदि जिलों में इस नस्ल के पशु पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। जहाज गढ़, भिवानी, बहादुरगढ़, हिसार आदि पशु मेलों में यह अधिक बेची जाती हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—इस नस्ल का रंग सामान्यत: सफेद या हल्का धूसर होता है।

इस नस्ल के पशुओं का मुँह सँकरा, माथा चपटा, सींग छोटे ऊपर उठकर मुड़े हुए तथा दोनों सींग के बीच (poot) उभरा हुआ होता है व कान छोटे तथा कद मझोला होता है। गर्दन मजबूत तथा गलकम्बल और ठाँटा छोटा तथा मुतान खिंचा हुआ होता है। इनकी खाल खिंची हुई तथा नाभि पट्टा पेट से चिपका होता है।

इस नस्ल का अयन सुविकसित होता है। इनका सिर, गर्दन, गलकम्बल एवं पिछला भाग गहरे धूसर रंग का पाया जाता है। काली थूथन, चौड़े नथुने तथा मध्यम आकार के थन होते हैं।

उपयोगिता—ये गायें 15 माह के अन्दर में ब्याती रहती हैं तथा प्रतिदिन लगभग 4.5 किग्रा. दूध देती हैं। यह नस्ल एक ब्यांत (300 दिन) में औसतन 1,135 किग्रा. दूध उत्पादन करती है, परन्तु विशिष्ट ढंग से पाली गई गायें एक ब्यात में 1,800 किग्रा. दूध देती हैं। दुग्ध में वसा 4.5% तक होती है। इन गायों का अधिकतम दूध उत्पादन एक ब्यात में लगभग 3500 किग्रा है।

हरियाणा नस्ल बैलों के लिए बहुत प्रसिद्ध है और हल जोतने व भारवाहन के लिए ये बैल अद्वितीय हैं। हरियाणा जाति के पशुओं में दोनों गुण (दूध + अच्छे बछड़े) होने के कारण विभिन्न राज्यों में इस जाति के साँड़ों को देशी गायों की नस्ल सुधारने के लिए प्रयोग किया जाता है।

(2) थारपारकर नस्ल (Tharparkar Breed)—इसका जन्म स्थान दक्षिण-पूर्वी-सिन्ध (पाकिस्तान) का शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क रेगिस्तानी भाग है। इस नस्ल के शुद्ध वंशीय पशु अमरकोट, नौकोट, धोरी नारी और चोर के पार्श्वीय क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इस क्षेत्र के

दक्षिण में वृक्ष रहित रेगिस्तान है जिसे कच्छ का रन कहते हैं। यहाँ पर पशु 24 घण्टे चरते हैं तथा दिन में एक बार पानी पीने के लिए कुओं पर एकत्रित होते हैं। इस क्षेत्र की ज्वार एवं बाजरा प्रमुख फसलें है। पशु इसी चारे पर जीवन निर्वाह करते हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—गाय सामान्यत: हल्के धूसर रंग की होती है। युवावस्था में साँड़ सम्पूर्णत: धूसर रंग के होते हैं। आयु के अनुसार इस नस्ल के पशुओं का रंग सफेद होता है। युवा पशुओं में रीढ़ की हड्डी के ऊपर पूरी लम्बाई में हल्की भूरी धारी होती है।

इस नस्ल के पशु मझौले कद के होते हैं तथा पैर एवं हड्डियाँ अधिक मजबूत होती हैं। मुँह लम्बा तथा माथा उभरा हुआ-सा होता है। सींग मध्यम आकार के मोटे व ऊपर उठे हुए होते हैं। इसका सिरा नुकीला नहीं होता है तथा लम्बे झुके हुए होते हैं। इनका कद, कूबड़, मुतान तथा कमर साधारण होते हैं।

उपयोगिता—रेगिस्तान में पले होने के कारण इस नस्ल के पशु अधिक बलिष्ठ होते हैं तथा चराई एवं कम आहार पर जीवित रह सकते हैं। बैलों का प्रयोग हल एवं गाड़ी खींचने में किया जाता है।

इस नस्ल की गायें दुधारू होती हैं और 305 दिन के ब्यांत में 4375 किग्रा. से अधिक दूध उत्पादन करती हैं। राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धानशाला, करनाल में इन गायों का औसत उत्पादन प्रतिदिन 7.25 किग्रा. है। प्रति ब्यांत औसत दुग्ध उपज 1,100-2,000 किग्रा. है।

(3) कॉकरेज नस्ल (Kankrej Breed)—इन नस्ल को बन्नी बगधिया नाम से भी पुकारते हैं। इसका मूल स्थान कच्छ के रन का दक्षिणी-पूर्वी भाग है। यह भाग थारपारकर जिले के दक्षिणी-पश्चिमी कोने से दक्षिण में अहमदनगर तक तथा पूर्व में रियासत राघनपुर तक फैला हुआ है। इस भाग में चारे के लिए बाजरा व ज्वार की फसलें उगाई जाती हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—रंग भूरा धूसर होता है। बच्चों का रंग राख जैसा भूरा व काला होता है। जो आगे कुछ समय बाद समाप्त हो जाता है।

इस नस्ल के पशु भारी आकार के होते हैं। यह भारत की सबसे भारी नस्ल समझी जाती है। इनका माथा चौड़ा व मध्य में थोड़ा-सा भीतर की ओर धँसा हुआ होता है। सींग मजबूत तथा टेढ़े होते हैं तथा अधिक ऊँचाई तक खाल में दबे रहते हैं।

इस नस्ल के पशु शक्तिशाली होते हैं तथा छाती चौड़ी, पीठ सीधी होती है तथा ठाँटा, नितम्बी मुतान तथा टखनों के नीचे तक लटकती हुई काली धब्बेयुक्त पूँछ प्रमुख गुण हैं। इनकी त्वचा कड़ी होती है। इस नस्ल की चाल 'सवाई चाल' के नाम से मशहूर है अर्थात् ये तेज चलते हैं तथा पिछले खुरों का निशान, अगले खुरों के निशान से आगे पड़ता है। इनके पैरों की गुम्ची प्राय: काले रंग की होती है।

उपयोगिता—कॉकरेज भारत की सर्वश्रेष्ठ गायों में से एक प्रमुख नस्ल है। इस नस्ल के पशु बड़े बलवान होते हैं। भारवाही कार्यों में इन पशुओं की अधिक माँग है। इस नस्ल की गायें फार्मों पर लगभग 7 किग्रा. प्रतिदिन दूध देती हैं। एक ब्यांत में अधिकतम दुग्ध उत्पादन लगभग 3,258 किग्रा. है। औसत दुग्ध उपज प्रति ब्यांत 1,200 किग्रा. है।

इस नस्ल के बैल चलने में बड़े तेज होते हैं।

इस जाति के पशु नस्ल सुधार कार्य के लिए अमेरिका तथा अन्य देशों के लिए अधिक संख्या में निर्यात किये जाते हैं। हरियाणा नस्ल की तरह इसका भी महत्व है।

(4) ओंगोल नस्ल (Ongole Breed)—इस नस्ल के पशुओं का जन्म स्थान आन्ध्र प्रदेश का ओंगोल भाग है। है।

इस नस्ल की गायें नैलोर, गुन्तूर, नरसरा वपेत, तालुके तथा वापर्टला, साठना पल्ली और काण्डर भाग में पाली जाती हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—इस नस्ल की गायों का रंग सफेद होता है । नर पशुओं के सिर, गर्दन, ककुद पर गहरे धूसर (dark grey) रंग की धारियाँ पाई जाती हैं।

इस नस्ल के पशुओं का शरीर भारी-भरकम होता है और शरीर लम्बा तथा गर्दन छोटी होती है तथा टाँगें लम्बी एवं माँसल होती हैं। ठाँटा विकसित तथा गलकम्बल भारी होता है। चेहरा लम्बा तथा माथा चौड़ा होता है।

उपयोगिता—कृषि कार्य तथा बोझा ढोने तथा दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से इस नस्ल के पशु बहुत अच्छे रहते हैं। गाय सीधी तथा बैल बड़े शक्तिशाली होते हैं। अत: यह भारत की सर्वोत्तम नस्लों में एक है और दोनों कार्यों में उत्तम समझी जाती है।

इन नस्ल की गायें औसतन 3.75-6 किग्रा. दूध प्रतिदिन देती हैं, परन्तु गायें एक ब्यांत में औसतन 2,600 किग्रा. दूध देती हैं। अधिकतम दुग्ध उत्पादन लगभग 3,260 किग्रा. प्रति ब्यांत है। दूध में वसा की मात्रा 5% तक होती है।

(5) मेवाती नस्ल (Mewati Breed)—यह नस्ल मथुरा जिले के कोसी नामक क्षेत्र में पाई जाती है। इसीलिए इसे कोसी नस्ल भी कहते हैं। इसके अलावा अलवर, भरतपुर क्षेत्र में बहुतायत से पाई जाती। इस नस्ल के पशु प्रजनन हेतु अलवर केन्द्र (राजकीय फार्म) पर रखे गये हैं। हरियाणा के गुड़गाँव जिले में भी ये पाये जाते हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—इस नस्ल के पशुओं का रंग सफेद होता है तथा कुछ भाग (सिर, कन्धा आदि) गहरे रंग के होते हैं। ये पशु हरियाणा नस्ल से मिलते-जुलते होते हैं।

इस नस्ल के पशु हरियाणा नस्ल की अपेक्षा छोटे होते हैं। इनका माथा उभरा हुआ तथा सीगों की नोंक पीछे की ओर मुड़ी होती है। इनका ठाँटा तथा गलकम्बल काफी विकसित होता है। पशुओं की पूँछ लम्बी तथा नीचे से कुछ काली होती है। ये पशु सीधे स्वभाव के होते हैं।

उपयोगिता—यह नस्ल प्रतिदिन 3.5-45 किग्रा. दूध देती है। इन गायों का औसत दुग्ध उत्पादन 280 दिन के ब्यांत में 1,000-1,200 किग्रा. है। इसके बैल बड़े बलिष्ठ होते हैं तथा भारी हल एवं गाड़ी आदि के लिए अधिक उपयोगी होते हैं।

(6) गंगातीरी नस्ल (Gangatiri Breed)—इसे शाहाबादी नस्ल के नाम से भी पुकारा जाता है। इसका मूल स्थान शाहाबाद जिले का गंगाखादर भाग है तथा बिहार के सारण जिले तथा उत्तर प्रदेश के बलिया व गाजीपुर प्रमुख भाग हैं। ये पशु शान्त स्वभाव के होते हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—इस नस्ल के पशुओं का रंग सफेद होता है।

इस नस्ल के पशु मझौले कद के होते हैं। गर्दन छोटी, सींग मोटे तथा माथा चौड़ा होता है और सिर लम्बा तथा आँखे चमकीली होती हैं।

उपयोगिता—इस नस्ल की गाय 3-6 किग्रा दूध प्रतिदिन देती है, परन्तु इसका अयन (udder) बड़ा होता है। बैल कृषि कार्य के लिए उपयोगी होते हैं।

(7) निमाड़ी नस्ल (Nimari Breed)—यह नस्ल मध्य प्रदेश के खरगौन जिले में पाई जाती है। इसी कारण इसे खरगौन के नाम से पुकारते हैं। मूल स्थान निमाड़ जिला है, परन्तु नर्मदा घाटी में इस नस्ल के पशु अधिक पाये जाते है। इस नस्ल के पशु प्रजनन केन्द्र इन्दौर और सिमरौल में भी पाले जा रहे हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—इस नस्ल के पशुओं का रंग बड़े-बड़े धब्बेयुक्त लाल होता है। कुछ पशुओं के धब्बे लाल रंग के होते हैं।

इस नस्ल के बैल मध्यम आकार के होते हैं। इनका शरीर लम्बा तथा पीठ सीधी होती है। सिर मध्यम आकार तथा माथा उभरा हुआ होता है। आँखें चमकीली गुलाबी लाल रंग की होती हैं। ककुद विकसित होने के कारण साँड़ों की गर्दन छोटी होती है। सींग ऊपर निकलकर बाहर उठकर पीछे घूम जाते हैं।.

उपयोगिता—इस नस्ल की गायें औसतन 1.2-2 किग्रा. दूध प्रतिदिन देती हैं। एक ब्यांत में 275 से 410 किग्रा. इनकी औसत दुग्ध उपज है। अधिकतम दुग्ध उपज लगभग 900 किग्रा है। बैल कुओं से रहट द्वारा पानी खींचने के लिए अधिक संख्या में प्रयोग किये जाते हैं।

(8) राठ नस्ल (Rath Breed)—इस नस्ल के पशु जिला अलवर (राजस्थान) के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में शुद्ध रूप से मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस नस्ल के पशुओं की उत्पत्ति हरियाणा एवं नागौरी नस्लों के पशुओं के संयोग से हुई है। इनका पालन-पोषण कम खर्च पर केवल चराकर ही हो जाता है। अत: इन्हें गरीब लोग अधिकांशत: पालते हैं। इस कारण ये गरीबों के पशु कहलाते हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—इन पशुओं का रंग प्राय: सफेद होता है। इनका शरीर लम्बा, सिर मध्यम, सींग छोटे तथा मजबूत होते हैं। आँखें ठीक विकसित तथा चंचल होती हैं। बैल और साँड़ की गर्दन, माथा और थूथन भूरे रंग के होते हैं।

उपयोगिता—इनका अयन मध्यम आकार का विकसित होता है। यह बदन से सटा हुआ होता है एक ब्यांत में 900 से 1000 लीटर दूध दे देती है। इस नस्ल के पशु शक्तिशाली

एवं गठे शरीर वाले होते हैं। गायें 4.5 किया. दूध प्रतिदिन तथा अच्छी गायें लगभग 6-7 किग्रा. दूध प्रतिदिन देती हैं। बैल कृषि कार्य व बोझा खींचने में उत्तम होते हैं।

(C) भारवाही नस्लें (Draft Breeds)

(1) अमृत महल नस्ल (Amrit Mahal Breed)—इस नस्ल का मूल स्थान कर्नाटक प्रदेश का मैसूर क्षेत्र है। इसके अलावा मद्रास राज्य के दक्षिणी भाग में यह नस्ल अधिक मात्रा में पाई जाती है।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—रंग भूरा तथा सिर व गर्दन काली होती है और चेहरे व कम्बल पर सफेद धब्बे होते हैं। गायें सफेद रंग की होती हैं।

इस नस्ल के पशुओं का शरीर गठा हुआ तथा पीठ आकार में छोटी एवं सीधी होती है। सींग लम्बे तथा विशेष आकृति के होते हैं जो गर्दन के दोनों ओर फैले होते हैं। कान छोटे, झुके हुए तथा ठाँटा नुकीला तथा गलकम्बल सुविकसित होता है

उपयोगिता—इस नस्ल के पशु अधिक भयावह प्रकृति के होते है। अत: इन्हें बाँधकर रखा जाता है। इस नस्ल के पशु बहुत छोटे तथा अधिक कार्यक्षमता वाले होते हैं, परन्तु गायें बहुत कम दूध देती हैं। दैनिक उत्पादन प्रति गाय लगभग 2-3 किग्रा. है। इस नस्ल के बैल अधिक परिश्रमी होते हैं तथा कृषि कार्य एवं सड़क पर भारवाहन के लिए अधिक क्षमता वाले होते हैं। भारत की यह एक प्रमुख प्रसिद्ध भारवाही नस्ल है। बैल बहुत तेज दौड़ते हैं।

(2) हैल्लीकर नस्ल (Hallikar Breed)—इस नस्ल के पशु मैसूर राज्य के जैकर एवं हसन नामक स्थान पर अधिक पाये जाते है। इनका मुख्य स्थान मैसूर जिला माना जाता है। इसके अतिरिक्त मुम्बई राज्य, तमिलनाडु राज्य, देवगाँव. चिकरावली तथा सीमारवाट के सभी भागों में पाये जाते हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—रंग गहरा भूरा कालापन **(धब्बे)** लिए हुए होता है। इस नस्ल के पशुओं का सिर सँकरा तथा माथा चौड़ा होता है जो मध्य में दबा रहता है। कान छोटे व नुकीले तथा साधारण प्रकार का गलकम्बल पाया जाता हैं। सींग पीछे की ओर तलवार के समान नुकीले होते हैं। ये पशु अमृतमहल नस्ल से मिलते-जुलते होते हैं।

उपयोगिता—इस नस्ल के बैल बलवान होते हैं तथा भारवाहन व कृषि कार्य के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। ये बैल अधिक फुर्तीले होते हैं तथा लगन से कार्य करते हैं। गायें बहुत कम दूध देती हैं। लगभग 2 किग्रा. दूध प्रतिदिन गाय से प्राप्त होता है।

(3) नागौरी नस्ल (Nagori Breed)—इसका जन्म स्थान जोधपुर रियासत (भूतपूर्व) का उत्तर-पूर्वी क्षेत्र है। हिसार हाँसो (पंजाब) तथा अजमेर में भी यह नस्ल पाली जाती है तथा नागौरी पशु प्रजनन फार्म पर यह नस्ल रखी जाती है।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—यह भारत की प्रमुख भारवाही नस्लों में से एक है। रंग प्राय: सफेद एवं धूसर होता है।

शरीर लम्बा शक्तिशाली होता है। सीधी पीठ तथा मजबूत गर्दन, छाती चौड़ी तथा पिछला भाग मजबूत होता है। टाँगे सीधी, माँसल तथा पैर उत्तम होते हैं। मध्यम आकार के सींग नोंक पर झुके हुए होते हैं। बड़े-बड़े कान, मध्यम आकार का ठाँटा, ककुद तथा काले धब्बेयुक्त पूँछ होती है।

उपयोगिता—यह उत्तर भारत की प्रसिद्ध नस्ल है। बैल ताँगा, गाड़ी, रथ आदि मँझोली तथा तेज चाल वाली गाड़ियों को खींचने में उत्तम होते हैं। इस नस्ल के बैल काफी बड़े आकार के होते हैं तथा गाड़ी तेज भगाते हैं। गाय 3.75 किग्रा. प्रतिदिन दूध देती है। 250 दिन के ब्यांत में लगभग 900 किग्रा. दूध गाय से प्राप्त होता है।

(4) मालवी नस्ल (Malvi Breed)—इस नस्ल का मूल स्थान मध्य प्रदेश हैं। यह नस्ल मुख्य रूप से मालवा के शुष्क क्षेत्रों में पाई जाती है। इसके अलावा हैदराबाद तथा मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों (इन्दौर, भोपाल) में पाई जाती है।

रंग एवं आकार (Colour & Size)—इस नस्ल के पशुओं का रंग प्राय: धूसर (grey) तथा नर पशु का रंग आयु के साथ गहरा भूरा हो जाता है और गर्दन तथा ठाँटा का रंग काला हो जाता है।

इस नस्ल के पशुओं का शरीर गठा हुआ तथा हृष्ट-पुष्ट होता है। ये पशु चरागाह पर निर्भर रहते हैं। पशु ठिगने कद के होते है। छोटा व चौड़ा सिर, धँसा हुआ माथा तथा थूथन चौड़ी होती है। मुतान अधिक विकसित नहीं होता है।

उपयोगिता—इस नस्ल के बैल खेतों में हल जोतने तथा अन्य कृषि कार्यों एवं सड़कों पर हल्का बोझा ढोने के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं। ये मौसम की परिवर्तित परिस्थितियों को सहन करने में समर्थ होते हैं। इस नस्ल की गाय दूध कम देती है।

(5) आलमबादी नस्ल (Alambadi Breed)—इस नस्ल का जन्म स्थान कोयम्बटूर माना जाता है इसके अलावा कोलेगज, तमिलनाडु, मैसूर में बंगलौर तथा उत्तरी तराई में पाई जाती है। ये जंगलों में भी पायी जाती हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—गाय का रंग भूरा तथा नर का रंग गहरा भूरा कालापन लिए होता है। गाय सफेद व भूरी होती है।

सिर लम्बा, सँकरा तथा सींग उठे हुए तलवार की भाँति होते हैं। पूँछ मध्यम आकार की होती है। इस नस्ल के बैल शक्तिशाली होते हैं। इनकी सीथ व झालर छोटी होती है। साँड़ों की झालर बड़ी होती है। यह गाय दूध बहुत कम देती है।

(6) खेरीगढ़ नस्ल (Kherigarh Breed)—इसका मूल स्थान घाघरा के उत्तर में सरजू और मोहन नदियों के मध्य का क्षेत्र माना जाता है। उत्तर प्रदेश के लखीमपुर जिला के खेरीगढ़ परगने में इस नस्ल के घटिया पशु मिलते हैं। इसके अलावा ये लखीमपुर खीरी, बस्ती तथा बहराइच क्षेत्रों में पाली जाती हैं। तराई क्षेत्रों के लिए यह नस्ल अधिक उपयुक्त है।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—साधारणत: इस नस्ल का रंग सफेद होता है, परन्तु चितकबरे एवं काले रंग के पशु भी पाये जाते हैं। ये पशु छोटे कद के, कम लम्बे आकार के होते हैं।

इस नस्ल के पशुओं का मुँह सँकरा, सींग लम्बे तथा पतले और आँखे चमकीली तथा गर्दन एवं कान छोटे होते है। नर पशुओं का ककुद (hump) काफी विकसित होती है तथा मुतान छोटा व पूँछ लम्बी होती है।

उपयोगिता—यह नस्ल अधिक लोकप्रिय नहीं है। इसकी गायें कम दूध देती हैं। शासकीय फार्मों पर ये गायें औसतन एक से दो किग्रा. दूध प्रतिदिन देती हैं।

इस नस्ल के बैल हल्का बोझ ढोने व सवारी ताँगों में जोतने के लिए अच्छे होते हैं। ये पशु चराई के आधार पर पाले जाते हैं।

(7) पंवार नस्ल (Panwar Breed)—इस नस्ल का मूल स्थान पीलीभीत जिले की पूरनपुर परगने तथा खीरी जिले के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र माना जाता है। इसके अलावा यह नस्ल नैनीताल जिले में पाली जाती है।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—इस नस्ल का रंग काला तथा सफेद व चितकबरा होता है। इस नस्ल के पशुओं का मुँह सँकरा, आँखें बड़ी, चमकदार, सींग लम्बे और खड़े होते हैं तथा कान छोटे होते हैं। शरीर लम्बा तथा पूँछ लम्बी होती है।

इस नस्ल की गायें फुर्तीली तथा खूंख्वार होती हैं।

उपयोगिता—ये गायें बहुत कम दूध देती हैं। प्रतिदिन की दूध की मात्रा एक से दो किग्रा. होती है, परन्तु बैल हल जोतने व बोझा ढोने में मजबूत होते हैं। इस नस्ल के बैल चाल तथा शक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं।

ये पशु चरना अधिक पसन्द करते हैं तथा स्वतन्त्र रहना पसन्द करते हैं।

(8) कैनकथा नस्ल (Kankatha Breed)—इसका मूल स्थान बुन्देलखण्ड का क्षेत्र है। इसके अलावा उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के केन नदी के तटवर्ती क्षेत्रों में इस नस्ल के पशु अधिक संख्या में पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में यह नस्ल अधिक लोकप्रिय है। इस जाति के पशु झाँसी जिले के सेंदपुर में रखे गये हैं। इसे कनवरिया नस्ल भी कहते हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—रंग धूसर, गहरा धूसर तथा सफेद चितीदार होता है। इस नस्ल के पशुओं का आकार छोटा तथा पीठ सीधी, टाँगे छोटी तथा मजबूत होती हैं। माथा धँसा हुआ, नुकीले, कान छोटे नुकीले तथा पूँछ मध्यम लम्बाई की होती है।

उपयोगिता—इस नस्ल का गायें कम दूध देती हैं, परन्तु इस नस्ल के बैल गाड़ी में जोतने तथा हल्के कृषि कार्य के लिए उपयोगी हैं। अत: ये तेज गति से चलते हैं।

(9) बेचुर या बचौर नस्ल (Bechur or Bachor Breed)—ये पशु नेपाल की तराई और गंगा के आस-पास के दरभंगा जिले के उत्तर-पूर्वी बिहार में तथा सीतामढ़ी जिले और उसके उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में मिलते हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—इन पशुओं का शरीर, डील-डौल, रंग-रूप एवं शरीर शारीरिक रचना आपस में सफेद पशुओं के प्रतिरूप है। इन पशुओं का रंग भूरा भी होता है। माथा चौड़ा, आँखें बड़ी व चमकीली होती हैं, कान लम्बे तथा नीचे लटके होते हैं। पीठ सामान्य एवं सीधी होती हैं। गर्दन छोटी और कन्धे माँसल होते हैं।

उपयोगिता—गायें बहुत कम दूध देती हैं। ये लगभग 1 से 1.5 लीटर दूध प्रतिदिन देती हैं। बैल मजबूत शरीर वाले होते है। अत: बोझा ढोने तथा कृषि कार्य के काम में उपयोगी हैं मजबूत शरीर वाले होते है।

(10) कांगायाम नस्ल (Kangyam Breed)—इस नस्ल के पशु तमिलनाडु प्रदेश के कोयम्बटूर के दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्वी भागों में पाये जाते हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—इस नस्ल के पशु मध्यम आकार के डील-डौल एवं मध्यम कद के होते हैं। खाल पतली एवं शरीर से चिपकी रहती है। इनमें अधिकांश पशुओं का रंग सफेद भूरा होता है। गाय सफेद रंग की होती है। माथा चौड़ा उभरा हुआ एवं सींग नुकीले होते हैं। चेहरा लम्बा और माथे एवं नाक के बीच में थोड़ा दबा होता है। आँखें सुहावनी एवं विकसित होती हैं। नाक छोटी तथा कान छोटे और नुकीले होते हैं।

उपयोगिता—इस नस्ल की गाय कम दूध देती है। चुनी हुई गायें 3 से 5 लीटर दूध दे देती हैं। बैल बोझा खींचने वाला, फुर्तीला, मजबूत एवं देर तक कार्य करने वाला होता है।

(11) खिलारी नस्ल (Khilari Breed)—इस नस्ल के पशुओं की उत्पत्ति मैसूर क्षेत्र के गौ- पशुओं की हालीकर नस्ल से हुई है। इस नस्ल के पशुओं का मूल स्थान महाराष्ट्र प्रदेश का शोलापुर, सितारा, सतपुड़ा और धूलिया जिले हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—खिलारी नस्ल के पशु हल्के रंग के होते हैं। चेहरे पर विशेष प्रकार के चितकबरे धब्बे होते हैं। इन पशुओं की नाक हल्के गुलाबी रंग की होती है। इनका माथा लम्बा और कम चौड़ा होता है। चेहरा पतला, लम्बा एवं चिकना होता है। त्वचा झुर्रीरहित होती है। आँखें छोटी, उभरी, लम्बी और चमकीली होती हैं। कान छोटे, नुकीले और सदैव बगल की ओर होते हैं। सींग लम्बे, नुकीले तथा माथे के पीछे मुड़े रहते हैं। गर्दन बहुत छोटी परन्तु अधिक मजबूत होती है। टाँगे सुडौल, गोल एवं सीधी होती हैं। मुतान पेट से सटा होता है।

उपयोगिता—इस नस्ल की गायें बहुत कम दूध देती हैं जो इनके नवजात बच्चों के पालन-पोषण के लिए प्रयुक्त होता है। इस नस्ल के बैल तेज चलने वाले, शक्तिशाली एवं भारवाही होते हैं।

(12) हिसार नस्ल (Hisar Breed)—इस नस्ल के पशुओं का मुख्य क्षेत्र हरियाणा प्रदेश के हिसार जिले की तहसील हाँसी है। वैसे यह पशु हरियाणा राज्य के अन्य क्षेत्रों भी पाये जाते है। राजकीय केटिल ब्रीडिंग फार्म, हिसार ने इस नस्ल की उन्नति के लिए उल्लेखनीय कार्य किया है। प्रतिवर्ष इस फार्म से सैकड़ों हिसार नस्ल के साँड़ दूसरी जगहों के लिए प्रजनन कार्य के लिए भेजे जाते है।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—इस नस्ल के पशुओं का रंग प्राय: सफेद होता है, लेकिन कुछ पशुओं में भूरा अथवा धूसर होता है। इस नस्ल के पशुओं का सिर हरियाणा नस्ल की अपेक्षा अधिक चौड़ा एवं मजबूत होता है। कान लम्बे तथा नीचे लटके होते है। सींग मध्यम लम्बाई के लेकिन मोटे होते हैं। आँखें बड़ी, सुन्दर एवं चमकीली होती हैं। गलकम्बल छोटा, मुतान पेट से लगी होती है।

उपयोगिता—गाय कम दूध देने वाली होती है, परन्तु बैल कृषि कार्य के लिए सर्वोत्तम होते है। साँड़ क्षेत्रीय नस्ल के पशुओं को सुधारने के काम आते हैं। गाय एक दिन में 3 से 4 लीटर दूध देती है। यह एक ब्यांत में 700 से 900 लीटर तक दूध देती है।

(13) डाँगी नस्ल (Dangi Breed)—इस नस्ल के पशुओं का मूल स्थान गुजरात के डाँगी से है। यह महाराष्ट्र में भी दिखाई देती है।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—इस नस्ल के पशुओं का रंग काला, कबरा अर्थात् काली एवं सफेद चित्तियों वाला होता है। चेहरा लम्बा, आँखें बड़ी, चमकीली, कान छोटे, सींग मोटे व छोटे नोंक रहित होते हैं। गलकम्बल अधिक लटकने वाला होता है।

उपयोगिता—यह एक ब्यांत में 500 से 650 लीटर दूध देती है। बैल कृषि कार्यों में बोझा ढोने के लिए उपयोगी होते हैं।

(14) सिरी नस्ल (Siri Breed)—इस नस्ल के पशु सिक्किम, दार्जिलिंग के पहाड़ी क्षेत्र तथा भूटान में पाये जाते हैं। इस नस्ल के पशु उत्तरी बिहार में भी अधिक संख्या में फैल गये हैं।

रंग एवं आकार (Colour and Size)—इस नस्ल के पशुओं का रंग काला- सफेद अथवा लाल सफेद होता है। कान प्राय: आकार में छोटे होते हैं। सिर छोटा, माथा चपटा व चौड़ा होता है। खाल पतली परन्तु अधिक रूँआ वाली होती है। अयन कम विकसित होता है। चेहरा पतला एवं लम्बा होता है। बैलों में मुतान खिंचा एवं पेट से सटा होता है। इन पशुओं का कूबड़ विकसित एवं घने बालों से ढँका होता है।

उपयोगिता—इनका दुग्ध उत्पादन प्रति गाय 2.5 से 3 लीटर होता है। इस प्रकार एक ब्यांत में औसतन 300-400 लीटर दूध देती है। बैल कृषि कार्य के लिए विशेष रूप से बोझा ढोने के लिए उत्तम होते हैं।

प्रश्न 9. गाय की विदेशी नस्लों की जानकारी दीजिए।
Give information about foreign breeds of cows.

उत्तर- गाय की विदेशी नस्लें (Foreign Breeds of Cattle)

यूरोप, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में पायी जाने वाली गायें (Bos-indicus) वंश की कूबड़युक्त गायों से भिन्न होती हैं। विदेशी नस्ल की गायों में विशेष रूप से कूबड़ नहीं होता और इनकी कमर एकदम सीधी होती हैं तथा शरीर का पिछला भाग अधिक चौड़ा एवं पूर्ण विकसित होने के कारण इनके पुट्ठे अधिक चौड़े होते हैं और अयन का विकास भी अपेक्षाकृत अधिक होता है। इनके अयन का जुड़ाव/सम्बन्ध आगे पीछे और ऊपर की ओर

बढ़ा हुआ तथा पूर्णरूपेण विकसित होता है। इसके फलस्वरूप इनका दुग्धोत्पादन बहुत अधिक होता है, किन्तु इसमें वसा प्रतिशत कम पाया जाता है। केरोटीन की दूध में अधिक प्रतिशत मात्रा होने के कारण इसका रंग गहरा पीला होता है। कुछ विदेशी नस्ल की गायों का विवरण निम्न प्रकार है-

(1) हाल्स्टीन फ्रीजन नस्ल—इस जाति का मूल निवास यूरोप का नीदरलैण्ड का फ्रीजलैण्ड प्रदेश माना जाता है। इस जाति की विशेषता इसका रंग होता है। अमेरिका में काला व सफेद जो कम अथवा अधिक अनुपात में हो सकता है। उत्तर-पश्चिमी यूरोप में इसका रंग लाल या सफेद की अधिकता में या लाल या काला पाया जाता है।

शारीरिक लक्षण—इस नस्ल की गायें प्राय: भारी शरीर वाली होती हैं। इनका रंग विशेष रूप से काला सफेद या कभी लाल सफेद होता है। सींग हो सकते हैं और नहीं भी, लेकिन कुकुद नहीं पाया जाता है। इनका थूथन चौड़ा, नथुने खुले हुए एवं जबड़े मजबूत होते हैं। आँखें चंचल, चमकदार, बड़ी तथा कान मध्यम आकार के होते हैं

उपयोगिता—इस नस्ल की गायों का एक ब्यांत का दुग्धोत्पादन 6,300 से 6,500 लीटर है, लेकिन इनके दूध का वसा प्रतिशत मात्रा 3.6 प्रतिशत ही होती हैं। कभी-कभी 25 माह की आयु में पहली बार बच्चा दे देती हैं। यह जाति गौ-माँस व दुग्धोत्पादन के लिए सर्वोत्तम है।

(2) जर्सी नस्ल—इस नस्ल का मूल स्थान इंग्लैण्ड का जर्सी द्वीप समूह है।

शारीरिक लक्षण—इनके शरीर का रंग हल्का लाल या बादामी होता है जिस पर सफेद रंग के धब्बे पाये जाते हैं। यह दुधारू गायों की उत्तम जाति है जिसका शरीर पूर्णरूपेण विकसित एवं चुस्त होता है। इसका सिर, पीठ एवं कन्धा एक सीध में होता है। सींग छोटे और आगे को मुड़े हुए होते हैं। पेट पूर्णत: विकसित होता है। साँड़ का शरीर भार 650 से 675 किग्रा. तथा मादा का शरीर भार 425 से 450 किग्रा. होता है।

उपयोगिता—इस गाय का एक ब्यांत का औसत दुग्ध उत्पादन 4,600 लीटर है। प्रथम ब्यांत की आयु लगभग 26 माह से 30 माह होती है। इसके दूध का वसा 5 से 5.5 प्रतिशत होता है।

(3) ब्राउन स्विस—इस नस्ल का मूल्य स्थान स्विट्जरलैण्ड है। इसके अतिरिक्त यह जाति इटली, फ्रांस एवं जर्मनी में भी पायी जाती है। यह भी द्वि-प्रयोजनीय नस्ल है जिससे अधिक मात्रा में दूध व माँस पैदा होता है। इस नस्ल के पशु विपरीत परिस्थितियों में भी अपने को अभ्यस्त कर लेते हैं।

शारीरिक लक्षण—इस नस्ल के पशुओं का रंग हल्का पीला या गेरुआ होता है। शरीर गठीला व सुदृढ़ होता है। आँखें बड़ी-बड़ी, चमकीली, शरीर त्रिकोणाकार, सींग छोटे और आगे को मुड़े हुए होते हैं।

उपयोगिता—गायें एक ब्यांत में 4,200 लीटर दूध देती हैं जिसमें 4% वसा तथा 135% SHF वसा रहित ठोस पदार्थ पाये जाते हैं। माँस उत्पादन के लिए यह सर्वोत्तम है।

(4) गर्नसी नस्ल—इस नस्ल के पशुओं का रंग बादामी जिन पर पीले रंग के धब्बे पाये जाते हैं। सींग पीले रंग के छोटे और आगे नुकीले होते हैं। गायें एक ब्यांत में 4,500 से 5,000 लीटर दूध देती हैं। गाय का अयन अच्छी तरह से विकसित होता है। गायें पहली बार लगभग 28 माह में ब्याई जाती हैं।

(5) आयरशायर—यह नस्ल स्कॉटलैण्ड में विकसित की गई है। इस नस्ल के पशु बहुत ही फुर्तीले एवं भड़कीले किस्म के होते हैं। डेरी पशुओं में सबसे सुन्दर एवं आकर्षक नस्ल मानी जाती है। इन पशुओं को संभालना काफी कठिन होता है। यह मध्यम दूध देने वाली नस्ल मानी जाती है।

(6) रेडडैनिश—यह नस्ल जुटलैण्ड के दक्षिणी भाग में पाये जाने वाले देशी पशुओं तथा एगैल्न के एमलर नस्ल के पशुओं के संकरण से प्राप्त हुई हैं। डेनमार्क की यह सबसे प्रसिद्ध गाय की नस्ल है। यह एक द्विगुण सम्पन्न नस्ल हैं। जो दूध तथा माँस के लिए प्रसिद्ध है।

शारीरिक लक्षण—नरों का औसतन शरीर भार 1,000 से 1,200 किलोग्राम तथा मादा का औसत शरीर भार 650 से 800 किग्रा तक होता है। पेट के नीचे सफेद रंग के धब्बे हो सकते हैं। सींग छोटे, मोटे तथा ऊपर व आगे की ओर निकले रहते हैं।

दुग्ध उत्पादन—इनकी दुग्ध उत्पादन क्षमता का रिकार्ड 5,500 किलोग्राम तक पाया जाता है।

प्रश्न 10. गुणवत्ता वाले दूध के लिए डेयरी पशुओं को खिलाने का महत्व बतलाइए।
Explain the importance of feeding dairy animals for quality milk.

उत्तर- गुणवत्ता वाले दूध के लिए डेयरी पशुओं को खिलाने का महत्व

भैंस तथा गाय की खुराक और उसकी मात्रा उसके दूध और वजन पर बहुत हद तक निर्भर करती है। वहीं कुछ लोग भैंस के आहार को दूध के फैट की वजह से भी बदलते रहते हैं। ऐसे में पशुपालक को यह बात खासतौर पर ध्यान रखनी चाहिए कि सबसे जरुरी भैंस के लिए संतुलित आहार है इसके बारे में हम आगे आपको नीचे बताने वाले हैं।

भैंस का हरा चारा

भैंस या अन्य दुधारू पशुओं के लिए हरा चारा बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। भैंस को हरे चारे आवश्यकता पूरे साल होती है। ऐसे में अगर हरे चारे की मात्रा को पशु को कम मिले तो इससे पशु दूध कम देने लगता है और पशु के शरीर में प्रोटीन की कमी भी हो सकती है। पशु को जब भी आहार दिया जाए तो इसमें हरे चारे की मात्रा को 60 प्रतिशत जरूर रखना चाहिए तभी पशु स्वस्थ रहेगा और दूध भी पूरा देगा। भैंस के हरे चारे में आप हम आपको निम्नलिखित तत्वों को शामिल कर सकते हैं-

- लोबिया घास-एस-450, 457, रष्यिजाइन्ट, यू. पी. सी-287, 286, एन.पी.एच. एस.पी-42-1 सी.ओं-1,14

- सरसों-जापानी रेप, आएम-98, 100, लाही-100, चाइनीज कैबेज एफ 2-902, 916
- दीनानाथ घास-टाईप-3, 10, 15, आई.जी.एफ.आर.आई-एस 3808, जी 73-1, टी-12
- बाजरा-जाइन्ट हाईब्रिड, के 674, 677, एल-72, 74, टी-55, डी-1941, 2291
- मक्का-गंगा सफेद, 2, 3, 5 जवाहर, अम्बर, किसान, सोना, मंजरी, मोती
- बरसीम-मैस्कावी, बरदान, बुन्देला, यू.पी
- अंजन घांस-पूसा जाइन्ट अंजन, आई. जी. एफ. आर. आई एस 3108,3133, सी-357358
- रिजका-टाईप - 8, 9, आनंद-द्वितीय, आई.जी. एफ. आर. आई. एस 244,54, एल. एल. सी.-5 बी. 103
- जई-एच.एफ.ओ.-14, ओ. एस.-6 एवं 7, वी.पी. ओ-94
- ज्वार-पी.सी-6,9, 23, एम. पी. चरी, पूसा चरी, हरियाणा चरी
- सूडान घास-एस. एस-59-3, जी-287, पाईपर, जै-69
- ग्वार-दुर्गापुरा सफेद, आई, जी. एफ. आर. आई.-212

भैंस तथा गाय का सूखा चारा

सूखे चारे के महत्व को अक्सर पशुपालक नजरअंदाज कर देते हैं जो कि पूरी तरह गलत है। आपको बता दें कि भैंस को सूखा चारा जरूर देना चाहिए। इससे पशु के पेट का सबसे बड़ा हिस्सा जिसे रूमेन के नाम से जाना जाता है, वह ठीक से काम करता है। जिसका असर पशु के दूध फैट पर भी दिखाई देता है। भैंस को सूखे चारे में कई चीजे दी जा सकती है, जो कुछ इस प्रकार हैं।

- भैंस को धान की पराली दी जा सकती है।
- गेहूं का तूड़ा दे सकते हैं।
- चने की फसल से बना सूखा चारा खिलाया जा सकता है।
- जई का तड़ा भी भैंस के लिए फायदेमंद होता है।
- बाजरे से बना सूखा चारा भी पशु को काफी पसंद आता है।

भैंस तथा गाय के लिए दाना मिश्रण

भैंस तथा गाय के लिए दाना मिश्रण कई तरह से काम करता है। दाना मिश्रण की वजह से भैंस लंबे समय तक दूध दे सकती है। ये जल्दी पच जाता है और इससे भैंस की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ जाती है। इसके अलावा भैंस के घी और दूध की गुणवत्ता काफी बेहतर हो जाती है। भैंस को ये सारे फायदे मिले इसके लिए दाना मिश्रण के लिए सही सामग्रियों का इस्तेमाल करना होगा। हम निम्नलिखित सामग्रियों का उपयोग दाना मिश्रण के अंदर कर सकते हैं।

गेहूं, जौ, बाजरा और मक्का जैसे अनाज दाना मिश्रण के लिए सबसे उपयुक्त होते हैं। इसके अलावा दाना मिश्रण के अंदर मूंगफली की खल, सरसों की खल, बिनौले की खल, दाल की चरी, गेहूँ का चोकर मिनरल मिक्सचर आदि को भी शामिल किया जाता है। दाना मिश्रण के अंदर सामग्रियों की मात्रा स्थान और मौसम के हिसाब से बदली या घटाई - बढ़ाई जा सकती है।

भैंस तथा गाय के लिए साइलेज

भैंस तथा गाय को साइलेज आहार के रूप में तब दिया जाता है जब हरा चारा मौजूद न हो। आपको बता दें कि पूरे साल में ऐसा कई बार होता है, जब पशु के लिए हरा चारा मौजूद नही होता। ऐसे में हरे चारे की कमी को पूरा करने के लिए ही साइलेज दिया जाता है।

साइलेज कई तरह के अनाजों के जरिए बनाया जाता है जैसे मक्का, गेहूं, ज्वार और बाजरा आदि। इन अनाजों को तब काटा जाता है जब ये अनाज दूधिया अवस्था में हो। इनकी कटाई करने के बाद इन्हें एक प्रक्रिया से गुजारा जाता है और एक गहरे गड्ढे में दबा दिया जाता है। इसके बाद जब हरा चारा उपलब्ध नहीं होता। तब ये पशु को दिया जाता है।

प्रश्न 11. चारा उत्पादों का वर्गीकरण कीजिए।
Classify Roughages products.

उत्तर-

चारा (Roughages)

मोटे चारे वे खाद्य पदार्थ हैं, जिनमें तन्तुमय पदार्थ की मात्रा 18 प्रतिशत या अधिक होती है तथा कुल पाच्य तत्व की मात्रा 60% से कम होती है, मोटे चारे कहलाती है। पशुओं के भोजन का तीन चौथाई भाग इन्हीं का होता है। शेष एक चौथाई मात्रा दाने एवं अन्य पदार्थों की होती है। मोटे चारे पशु की जीवन निर्वाह आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। मोटे चारे को 2 भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

(1) सूखे मोटे चारे,
(2) हरे मोटे चारे।

(1) सूखे मोटे चारे–इसके तहत ऐसे मोटे चारे आते हैं, जिनमें नमी की मात्रा बहुत कम होती है, इसके अन्तर्गत दलहनी फसलों जैसे- चना, मटर, अरहर इत्यादि का भूसा एवं अदलहनी फसलों जैसे-गेहूँ, जौ, धान, ज्वार इत्यादि का भूसा आती है। इसके अलावा सूखी घासों को भी इस वर्ग में रखा जा सकता है।

सूखे मोटे चारों का पाचक गुणांक कम होता है व इनकी अधिकांश मात्रा पशु शरीर से बिना पचे ही निकल जाती है। अधिकतर सूखे चारे निम्न कोटि के चारे माने जाते हैं क्योंकि इनमें प्रोटीन व फॉस्फोरस की मात्रा बहुत कम या होती ही नहीं है, ये केवल पशुओं के पेट भरने के ही काम आती हैं। हमारे देश में इस प्रकार के सूखे चारे की उपलब्धता पर्याप्त होती है, इसीलिए इसे पशुओं को खिलाया जाता है, यद्यपि ये अकेले पशु की शरीर आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकते हैं।

(2) हरे मोटे चारे–इसे मुख्यत: 2 भागों में बाँटा जा सकता है-

(i) बेफलीदार हरे चारे,
(ii) फलीदार हरे चारे।

(i) बेफलीदार हरे चारे–इसके अन्तर्गत दो प्रकार के बेफलीदार चारे आते हैं। प्रथम तो वे जो स्वयं मौसम आने पर उँग आते हैं जैसे- घासें एवं दूसरा वे जिन्हें चारे के लिए विशेष तौर पर उगाया जाता है, जैसे- ज्वार, बाजरा, मक्का, जई इत्यादि। इन हरे चारों को इनको विभिन्न अवस्थाओं में काटकर खिलाया जाता है।

(ii) फलीदार हरे चारे–इसके तहत् प्रमुख रूप से बरसीम, रिजका, लूर्सन, ग्वार इत्यादि आते हैं। इनमें से बरसीम का उपयोग सर्वाधिक किया जाता है। ये चारे उन सभी क्षेत्रों में उगाये जाते हैं, जहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध हों। ये चारे सर्वोत्तम माने जाते हैं, क्योंकि इनमें प्रोटीन, कैरोटीन तथा कैल्सियम की मात्रा बहुत अधिक होती है। ऐसे चारे बहुत ही पौष्टिक एवं स्वादिष्ट होते हैं। अधिक पौष्टिक होने के कारण संतुलित आहार के दाने की कमी को इनसे पूरा करके सस्ता आहार बनाया जा सकता है। इसके अलावा भूमि की उर्वरा शक्ति को भी बनाये रखने में ये चारे सहायक होते हैं।

पशु आहार में मोटे चारे की उपयोगिता (Value of Roughages in Livestock Feeding)–पशु आहार में मोटे चारे का महत्व निम्नलिखित प्रकार से है-

1. चारे अधिक रेशेदार होने के कारण राशन की मात्रा में वृद्धि करते हैं।
2. भोजन प्रणाली में आवश्यक तनाव उत्पन्न करते हैं।
3. मोटे चारे सस्ते एवं शीघ्र शक्ति दायक होते हैं।
4. जुगाली करने वाले पशुओं के लिए इसका विशेष महत्व है।
5. भोजन प्रणाली के अन्दर अधिक पानी शोषित करके मृदु रेचक (Laxative) प्रभाव पैदा करते हैं।
6. रूमेन में बैक्टीरिया, प्रोटोजोआ आदि जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ाने के लिए आवश्यक वातावरण बनाना।
7. पशुओं के शरीर के लिए शक्ति प्रदान करते हैं।
8. मोटे चारे अकेले ही निर्वाह आहार प्रदान करते हैं।
9. भोजन प्रणाली की दीवारों में संकुचन एवं विमोचन क्रियाएँ सम्पन्न कराना।
10. पाचक रसों की क्रिया के लिए अधिक से अधिक सतह प्रदान करना।
11. सम्पूर्ण अजल पदार्थ (जो शरीर के लिए आवश्यक है) का 2/3 भाग मोटे चारों के द्वारा ही दिया जाता है।
12. मोटे चारों के रेशे से क्रिया करके उड़ने वाले अम्ल (Volatile Acids) जीवाणुओं के द्वारा तैयार होते हैं, जो पशुओं के शरीर के लिए शक्ति प्रदान करते हैं।
13. हरे चारे विटामिन 'A' का मुख्य स्रोत है।

14. हरे चारो से अच्छी किस्म की 'हे' तथा साइलेज तैयार कर सकते है।
15. स्वादिष्ट होने के कारण हरे चारों को पशु अधिक पसन्द करते है।
16. हरे चारे पाचक तथा स्वास्थ्यवर्धक होते है।
17. हरे चारे प्राकृतिक रूप से उगते है और आसानी से प्राप्त हो जाते है
18. पशुओं की भूख को तृप्त करने के लिए मोटे चारे ही मुख्य भूमिका निभाते है।

प्रश्न 12. दुधारू पशुओं के आहार में सूक्ष्म खनिज तत्वों का महत्व बतलाइए।
Explain the importance of mirco minerals in the diet of Milch animals.

उत्तर- दुधारू पशुओं के आहार में सूक्ष्म खनिज तत्वों का महत्व

दुधारू पशु के प्रजनन और दूध उत्पादन के लिए ऊर्जा और प्रोटीन के अतिरिक्त खनिज तत्वों का विशेष महत्व है। कैल्शियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम, सोडियम, क्लोराइड मुख्य खनिज तत्व है। कोबाल्ट, आयरन, मैंगनीज, आयोडीन, सेलेनियम, जिंक, कॉपर, क्रोमियम, सूक्ष्म खनिज है अर्थात इनकी आवश्यकता बहुत कम केवल मिलीग्राम प्रति किलो खनिज मिश्रण ही होती है। पशुपालक दुधारू पशु के लिए ऊर्जा, प्रोटीन और मुख्य खनिज तत्वों पर तो विशेष ध्यान देते हैं, क्योंकि इनका महत्व और इनकी मात्रा के बारे में पशुपालक कुछ हद तक जानकारी रखते हैं परन्तु सूक्ष्म खनिजों के महत्व के प्रति जागरूक नहीं है। यह जानना नितांत आवश्यक है कि इन सूक्ष्म तत्वों की भी अन्य मुख्य खनिज तत्वों के उपयोग में अहम् भूमिका है।

व्यवसायिक खेती के कारण मृदा में इन सूक्ष्म तत्वों की कमी पाई गयी है। इसके कारण पशु चारे में इनकी मात्रा काफी कम है। खाद्य में उपस्थित इन खनिजों का शरीर में अवशोषण काफी कम होता है। सूक्ष्म तत्वों की आपूर्ति के लिए चारे पर निर्भर न होकर अतिरिक्त खनिज मिश्रण देना आनिवार्य है।

सूक्ष्म तत्वों को देते समय इनकी पर्याप्त मात्रा का ज्ञान होना आवश्यक है। क्योंकि कई तत्व इनमें से एक दूसरे के विरुद्ध होते हैं। जैसे कि एक तत्व की मात्रा कम या अधिक होने से दूसरे सूक्ष्म तत्वों के अवशोषण में बाधा आती है।

कोबाल्ट—यह तत्व विटामिन 'बी' के निर्माण में अनिवार्य है। गाय भैंस में विटामिन बी आहार में देना उपयोगी नहीं है। क्योंकि यह इनके शरीर में ही कोबाल्ट द्वारा बनता है। यहाँ यह जानना जरुरी है कि दुधारू पशु में पेट के चार हिस्से होते हैं। रुमेन, रेटयुकुल्मम ओमेजम तथा आबोमेजम, इनमें रुमेन सबसे बड़ा हिस्सा होता है। रुमेन में लाखों की संख्या में कई प्रकार के जीवाणु होते हैं, जो पशु के लिए आवश्यक पोषक तत्व करते है। इससे खून में पड़ी फैटी एसिड बढ़ जाएंगी। धीरे-धीरे ये लीवर में जमा होकर लीवर का कार्यक्षमता को कम कर देते हैं। ऐसी परिस्थितियों में पशु में कीटोसिस की आशंका बढ़ जाती है। पशु चारा खाना कम कर देता है और कमजोर हो जाता है। खाद्य में कोबाल्ट की कमी से पशु में कमजोरी आना, पशु का विकास धीमी गति से होना, एनीमिया, प्रसूति के बाद गर्भाशय

पूर्वावस्था में देर से आना जिससे अगला बच्चा देर से होना, अनियमित मदचक्र, बार-बार कृत्रिम गर्भाधान करना, दुग्ध उत्पादन मे कमी आना आदि समस्याएं उत्पन हो सकते हैं।

दुधारू पशु के लिए कोबाल्ट का महत्व ब्याने के 21 दिन पहले और 21 दिन ब्याने के बाद अधिक होता है। इन दिनों पशु खाना कम कर देता है और ग्लूकोज की खपत भ्रूण बढ़ने के साथ-साथ दुग्ध उत्पादन में अधिक होती है। ऐसी नाजुक स्थिति में कोबाल्ट की कमी से आवश्यक मात्रा में विटामिन 'बी' नहीं बनेगा जिससे खून में ग्लूकोज की कमी आ सकती है। ब्याने के बाद पशु बीमार होना या दुग्ध उत्पादन में कमी होना आदि समस्याओं से दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में भारत एक अग्रगण्य देश के रूप में उभर रहा है। इस वित्त वर्ष में भारत का दुग्ध उत्पादन 143 मिलियन टन है जो कि विश्व के कुल दुग्ध उत्पदन का 16% है। श्वेत क्रान्ति के अथक प्रयासों में, सुनियोजित योजना विविध डेरी विकास कार्यक्रमों, कृषकों, सक्रिय सहकारिताओं की विशेष भूमिका रही है। दुग्ध एवं दुग्ध उत्पादन भारतीय खाद्य व्यवस्था के महत्व पूर्ण अंग है और इसकी मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। डेरी व्यवसाय भी करोड़ों सीमान्त और छोटे किसानों के आजीविका निर्वाह का महत्वपूर्ण स्रोत बन गया है। पशुपालन व्यवसाय मुख्यत: हरे चारे पर निर्भर करता है क्योंकि हरा चारा ही पशुओं के लिए पोषक तत्वों का एक मात्र सस्ता एवं सूक्ष्म स्रोत है। अत: पशुपालन व्यवसाय की सफलता के लिए पशुओं को वर्षभर हरे चारे की उपलब्धता करना आवश्यक है। वर्तमान में हमारे देश में 63% हरा चारा एवं 24% सूखे चारे की कमी है यह मांग आगामी वर्षों में और ज्यादा बढ़ेगी। बढ़ती हुई चारे की मांग की आपूर्ति को केवल प्रति इकाई उत्पादन बढ़ाकर ही पूरा किया जा सकता है।

सेलेनियम—पशु प्रजनन प्रक्रिया के दौरान और प्रजनन के बाद उत्पन्न होने वाले विकारों से पशु स्वास्थ्य और दुग्ध उत्पादन में गिरावट आती है जिससे पशुपालक का काफी नुकसान होता है। प्रजनन विकारों से पशु की रक्षा करने के साथ-साथ पशु और नवजात बच्चों की रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से सेलेनियम का बाकी सूक्ष्म तत्वों से अधिक महत्व है। प्रजनन के बाद जेर अटकना, गर्भाशय खराब होना, अंडाशय में रसौली, ज्यादा दूध देने वाले पशु में सामान्य रोग जिससे अनियमित मदचक्र, गर्भधारण न होना, अयन में द्रव जमा होना, थनैला रोग, प्रतिकारक शक्ति कम होना, गर्भधारण देर से होना, दुग्ध उत्पादन में गिरावट आना आदि समस्याओं उत्पन्न हो सकती है। खाद्य में सेलेनियम की पर्याप्त मात्रा होने से इन सभी समस्याओं से पशु को बचाया जा सकता है।

एक किलो दूध में 0.01-0.025 मि.ग्रा. सेलेनियम स्रावित होता है। 0.3 मि.ग्रा. शुष्क पदार्थ सेलेनियम सभी दुधारू पशु के लिए पर्याप्त होता है। गर्भावस्था के दौरान 1.4 मि.ग्रा. प्रतिदिन और गर्भावस्था के अंतिम 21 दिनों में में 1.7 मि.ग्रा, प्रति सेलेनियम पर्याप्त है। दुग्ध उत्पादन के दौरान 10 किलो दूध देने वाले पशु के लिए 2.5 मि.ग्रा. और 20 किलो दूध देने वाले 3.0 मि.ग्रा. प्रतिदिन सेलेनियम पर्याप्त है। 6 मि.ग्रा. सेलेनियम प्रतिदिन ज्यादा दूध देने वाले पशु को थनैला रोग से बचाता है।

आयोडीन–कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा के चयापचय के लिए थायरोक्सिन हार्मोन्स की आवश्यकता होती है। शरीर में ग्लूकोज अतिरिक्त होने पर ग्लूकोज को संचित करना और ग्लूकोज की कमी होने पर संचित ग्लूकोज उपलब्ध कराना आदि के लिए थायरोक्सिन की आवश्यकता होती है। ग्लूकोज के अलावा प्रोटीन उपलब्धता बढ़ाने के लिए भी थायरोक्सिन की आवश्यकता होती है। दुग्ध उत्पादन के उद्देश्य से थायरोक्सिन हार्मोन बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण है। थायरोक्सिन हार्मोन बनाने के लिए आयोडीन आवश्यक है। गर्भावस्था की आखिरी दिनों में दुग्ध उत्पादन और ठण्ड के समय थायरोक्सिन का उत्पादन बढ़ जाता है। पशु आहार में आयोडीन की मात्रा 0.6 मि.ग्रा. 100 किलो शरीर बहार पर्याप्त है। एक किलो दूध में 30- 300 मि.ग्रा. आयोडीन स्रावित होता है। ज्यादा दूध देने वाले पशु में थायरोक्सिन का उत्पादन 2-3 मि.ग्रा. गुणा बढ़ जाता है। इसलिए इनके आहार में आयोडीन की मात्रा 1.5 मि.ग्रा. प्रति 100 किलो शरीर भार होना चाहिए। चारे में पत्तागोभी, सरसों, शकरकंद, सोयाबीन, चुकंदर, शलजम आदि होने से आयोडीन के अवशोषण में बाधा आती है इस परिस्थिति में आयोडीन की मात्रा अधिक होनी चाहिए। चारे में आयोडीन 0.5 मि.ग्रा. प्रति किलो शुष्क पदार्थ से अधिक नहीं होना चाहिए।

जिंक–पशु शरीर में कोशिकाओं की वृद्धि, हारमोंस के निर्माण, उपापचयन, भूख नियंत्रण, रोग प्रतिकारक शक्ति आदि नियंत्रित करने वाले एंजाइम के लिए जिंक की आवश्यकता होती है। खुर और स्तन का बाहरी सुरक्षा आवरण (काइटिन) बनाने में जिंक की आवश्यकता होती है। खुर और अयन स्वास्थ्य के साथ-साथ शरीर में तैयार होने वाले हानिकारक ऑक्सीकारक तत्वों को क्रियाविहीन करने के लिए जिंक पर निर्भर एंजाइम की आवश्यकता होती है। चारे में जिंक की पर्याप्त मात्रा खून और कोलोस्ट्रम एम्युनोग्लोबिंस बढ़ाता है जो पशु स्वास्थ्य और नवजात बछड़ों के लिए अधिक लाभदायक है। जिंक की कमी से भूख में कमी, पशु का विकास रुक जाना, वृषण का विकास न होना, सींग और खुर कमजोर होना, अंडाशय का विकास न होना, अनियमित मदचक्र, गर्भाधारण देरी से होना आदि समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। 500 किलो के पशु के लिए गर्भावस्था के दौरान आहार में जिंक की मात्रा 410 मि.ग्रा. प्रतिदिन और 20 किलो दूध देने वाले पशु के लिए 670 मि.ग्रा. प्रतिदिन पर्याप्त है। बीमारी और तनाव इन परिस्थितियों में शरीर में जिंक की जरूरत बढ़ जाती है। जिंक और कॉपर एक दूसरे के विरुद्ध है। खाद्य में जिंक की मात्रा अधिक होने से कॉपर के अवशोषण में बाधा आती है।

कॉपर–शरीर में तैयार होने वाले कई अत्यावश्यक एंजाइम और लोहे के अवशोषण के लिए कॉपर की आवश्यकता होती है। शरीर में तैयार होने वाले ऑक्सीकारक तत्वों जो शरीर की कोशिकाओं के लिए हानिकारक होते हैं और इनको नष्ट करने के लिए कॉपर की आवश्यकता होती है। कॉपर की कमी से पशु का विकास धीमी गति से होता है। हड्डियाँ कमजोर होना, प्रजनन क्षमता कम होना, रोगप्रतिकारक क्षमता कम होना, यौवनारम्भ देर से

होना, बार-बार गर्भधारण ना करना, भ्रूण मर जाना, जेर अटकना आदि समस्याएं आ सकती है। 500 किलो शरीर बहार वाले पशु के लिए गर्भावस्था के 100 दिन तक 103 मि.ग्रा. प्रतिदिन और 225 से ब्याने तक 140 मि.ग्रा. प्रतिदिन कॉपर पर्याप्त है दुग्ध उत्पादन के दौरान 10 किलो दूध देने वाले पशु के लिए 130 मि.ग्रा. और 20 किलो दूध देने वाले पशु के लिए 170 मि.ग्रा. कॉपर प्रतिदिन पर्याप्त है। खाद्य में सल्फर और मोलीब्डनम की अधिक मात्रा होने से कॉपर अवशोषण में बाधा आती है। इसलिए कॉपर और मोलीब्डनम 3:1 के अनुपात में होना चाहिए।

मैंगनीज–खाद्य में मैंगनीज की कमी से पशु का ढांचा विकसित न होना, पशु का विकास धीमी गति से होना, पैरों में कमजोरी, संधि (ज्वाएंट) बड़े होना, हड्डियों की ताकत कम होना, पशु कमजोर होना, पैर गुथना आदि समस्याएं उत्पन्न हो सकती है। इन सभी समस्याओं से पशु के प्रजनन पर विपरीत असर पड़ता है। जैसे कि पशु की प्रजनन क्षमता कम होना, गर्भाधारण न होना, पशु का गर्मी में रहना परन्तु गर्मी के लक्षण न दिखना आदि कठिनाइयों से पशुपालक गुजर सकता है। 500 किलो वजन के पशु के लिए गर्भावस्था के दौरान 175 मि.ग्रा. मैंगनीज प्रतिदिन पर्याप्त है। दूध उत्पादन के दौरान 10 लीटर दूध के 175 मि.ग्रा. और 20 किलो दूध के लिए 214 मि.ग्रा. मैंगनीज प्रतिदिन पर्याप्त है।

क्रोमियम–संक्रमण काल यानि ब्याने के पहले 21 दिन और 21 दिन बाद, यह समय दुधारू पशु के जीवन का सबसे नाजुक समय होता है। इन दिनों जरा सी अनदेखी पशुपालक का भारी आर्थिक नुकसान है। इन दिनों पशु काफी तनाव में रहता है। इससे शरीर में कुछ हानिकारक तत्वों का स्राव बढ़ जाता है। पशु चारा खाना कम कर देता है। खून में ग्लूकोज पर्याप्त मात्रा में होने पर भी कोशिकाओं को उपलब्ध नहीं हो पाता है। शरीर की ऊर्जा की कमी दूर करने के लिए शरीर का वसा प्रयोग होता है। इससे पशु ब्याने के बाद पतला और कमजोर हो जाता है। पशु में कीटोसिस उत्पन्न हो सकता है। पशु की रोगप्रतिकारक शक्ति का कम होना आदि समस्याएँ उत्पन्न हो सकती है। अब तक हुए अनुसंधानों से यह अनुमान लगाया गया है कि तनाव के समय में खाद्य में क्रोमियम की पर्याप्त मात्रा होने से पशु का चारा खाना बढ़ जाता है। शरीर की कोशिकाओं में ग्लूकोज और प्रोटीन की उपलब्धता बढ़ जाती है। इससे ब्याने के बाद पशु और बच्चा दोनों सेहतमंद रहते हैं और दोनों की रोग प्रतिकारक शक्ति भी बढ़ जाती है। दूध उत्पादन में भारी बढ़ोत्तरी आती है। खाद्य में 10 मि.ग्रा. क्रोमियम प्रतिदिन पर्याप्त है।

प्रश्न 13. पशुओं के आहार में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट तथा विटामिन के बारे में बतलाइए।

Tell about proteins, fats, carbohydrates and vitamins in the diet of animals.

उत्तर- **(i) कच्ची प्रोटीन–प्रोटीन** में कार्बन, हाईड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कुछ में गन्धक (Sulphur) और किसी-किसी में फॉस्फोरस तथा लोहा भी पाया जाता है। प्रोटीन

अत्यन्त ही जटिल रासायनिक पदार्थ है। प्रोटीन रासायनिक क्रियाओं द्वारा टूटकर अमीनो अम्ल उत्पन्न करती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रोटीन अनेक अमीनो अम्लों की शृंखला के मिलने से बनती है। प्रोटीन के संघटन में लगभग 24 अमीनो अम्ल काम आते हैं।

इसमें प्राय: 16% नाइट्रोजन पाई जाती है। भोज्य पदार्थों में प्रोटीन की मात्रा ज्ञात करने के लिये उनमें पहले कुल नाइट्रोजन की मात्रा ज्ञात करते हैं फिर नाइट्रोजन की मात्रा को 6.25 से गुणा करते हैं और प्रोटीन की कुल मात्रा मालूम हो जाती है।

कच्ची प्रोटीन के अन्दर दो प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं-

(a) यथार्थ प्रोटीन (True protein)।

(b) प्रोटीन विहीन नाइट्रोजन पदार्थ (Non-protein nitrogenous substances)—खाद्य पदार्थों में अनेक प्रकार के नाइट्रोजन युक्त पदार्थ जो कि प्रोटीन नहीं है, जटिल रचना युक्त पाये जाते हैं। इनमें आने वाले मुख्य पदार्थ ऐमाइड (Amides), ऐमीन (Amines), अमीनो अम्ल (Amino acids) तथा यूरिया (Urea) हैं। युवा बनने वाले पौधों में इनकी मात्रा अधिक मिलती है।

जुगाली करने वाले पशुओं (Ruminants) के पेट में उपस्थित जीवाणु इन प्रोटीन विहीन नाइट्रोजन पदार्थों पर क्रिया करके उत्तम प्रोटीन, अमीनो अम्ल पैदा करते हैं। अत: इन पशुओं के लिये ये बहुत महत्वपूर्ण हैं।

पशुओं के विभिन्न खाद्य पदार्थों में कच्ची प्रोटीन (Crude protein) की मात्रा पृथक्-पृथक् मिलती है, जो निम्नलिखित प्रकार है-

शुष्क रक्त गोश्त की छीलन	=	40-48% प्रोटीन
तेल उपजात जैसे खली	=	34-45% प्रोटीन
दो दालीय बीज	=	20-36% प्रोटीन
अनाज के उपजात	=	16-31% प्रोटीन
दो दालीय सूखी घास	=	13-16% प्रोटीन
अनाज साधारण	=	9-12% प्रोटीन
भूसा, हरी घास, कड़वी, साइलेज, जड़ें	=	1-7% प्रोटीन

प्रोटीन के कार्य (Functions of protein)—प्रोटीन के निम्नलिखित प्रमुख कार्य हैं-

(1) प्रोटीन के द्वारा शरीर का मांस बनता है। प्रौढ़ पशु के शरीर का लगभग 17 प्रतिशत भाग प्रोटीन का बना होता है।

(2) प्रोटीन शरीर के क्षीण हुए मांस की पूर्ति करती है।

(3) शारीरिक वृद्धि तथा उत्पादन के लिए आवश्यक है।

(4) भ्रूण के विकास तथा दूध व अण्डा उत्पादन के लिए प्रोटीन अत्यन्त आवश्यक है।

(5) प्रोटीन बाल तथा ऊन की वृद्धि करती है।

(6) प्रोटीन मादा के निकले दूध, पाचक रसों, खाल, बाल, सींगो एवं खुरों का भी कुछ भाग बनाती है। दूध में औसतन 3.5% प्रोटीन होती है।

(7) प्रोटीन शरीर को शक्ति भी प्रदान करता है।

(8) प्रोटीन के द्वारा ही एन्जाइम तथा हॉर्मोन की क्रिया सामान्य रूप से होती है।

(9) भोजन में प्रोटीन की कमी पाचक कार्बोहाइड्रेट के विश्लेषण पर बुरा प्रभाव डालती है।

(10) प्रोटीन शरीर को आवश्यक अमीनो अम्ल प्रदान करती है।

(11) प्रोटीन की मात्रा उत्पादन पर अच्छा प्रभाव डालती है।

(ii) वसा या ईथर (Fat or Ether Extract)—वसा तथा वसा के समान अन्य पदार्थ ईथर और ऐसे ही अन्य घोलक (Solvent) में घुलनशील होते हैं। पौधों में वसा ज्ञात करने के लिए ईथर निष्कर्षण विधि (Ether extraction method) प्रयोग करते हैं। जो पदार्थ इनमें घुलनशील होते हैं उन्हें ही वसा या ईथर निष्कर्ष कहते हैं। वसा पदार्थ, कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन तत्वों से मिलकर बने हैं। इनमें ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है।

वसा में कार्बन, हाइड्रोजन की मात्रा अधिक होने के कारण इनका ऑक्सीकरण होने के प्रति पौण्ड 2.25 गुनी शक्ति कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन की अपेक्षा अधिक मिलती है। इसलिए चारा दानों में इसका अधिक महत्व है। पशुओं को भोजन से प्राप्त वसा ही दूध की वसा की रचना करती है। वसा में कई वसा विलेय (Fat soluble) विटामिन्स जो कि उत्तम स्वास्थ्य, शरीर वृद्धि, प्रजनन के लिए आवश्यक हैं, पशु शरीर को वसा से प्राप्त होते हैं। भोजन में वसा की पर्याप्त मात्रा होने पर पाचन प्रणाली में लवणों का ठीक शोषण होता है।

पशुओं के विभिन्न खाद्य पदार्थों में वसा की निम्नलिखित मात्रा पाई जाती है-

मूँगफली, बिनौला, तिलहन (Oil seeds) आदि	=	1-35%
तेलीय खली (Oil cake)	=	5-8%
सादा अनाज (Ordinary grains)	=	10-30%
भूसा, जड़ें, हरी घासें, सूखी घासें (Hay)	=	0.9-3%

वसा के कार्य (Functions of fat)—वसा के निम्नलिखित कार्य हैं-

(1) शरीर को शक्ति तथा चर्बी प्रदान करना।

(2) शरीर को आवश्यक चिकने तेजाब जैसे- लिनोलीक, अरैकडोनिक तथा लिनोलानिक प्रदान करना।

(3) दुग्ध-वसा का निर्माण करना।

(4) कैल्सियम तथा कैरोटीन के शोषण में सहायता करना।

(5) ऊतकों की क्षय हुई चर्बी या वसा की पूर्ति करना।

(iii) कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate)—पशुओं के भोजन में कार्बोहाइड्रेट का विशेष महत्व है, क्योंकि पौधों का तीन चौथाई भाग कार्बोहाइड्रेट ही होता है। पशुओं की शक्ति (Energy) एवं ताप (Heat) का अधिक भाग कार्बोहाइड्रेट से मिलता है। इस श्रेणी में आने

वाले पदार्थ स्टार्च, शर्करा, सेल्युलोज तथा अन्य जटिल पदार्थ हैं। कार्बोहाइड्रेट, कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन से मिलकर बने हैं। इनमें हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन का वही अनुपात होता है जैसा पानी में होता है। अत: पूर्ण जलन (Combustion) के बाद पानी और कार्बन-डाइऑक्साइड ही शेष बचते हैं।

कार्बोहाइड्रेट को दो भागों में बाँटा गया है- प्रथम घुलनशील तथा दूसरा अघुलनशील या तन्तुमय पदार्थ (Crude fibre) है।

(a) घुलनशील कार्बोहाइड्रेट (Soluble Carbohydrates)—घुलनशील कार्बोहाइड्रेट प्राय: स्टार्च, शर्करा तथा अन्य कम महत्वपूर्ण कार्बोहाइड्रेट (pentoses) का बना होता है। घुलनशील कार्बोहाइड्रेट को नाइट्रोजन रहित निष्कर्ष (nitrogen free extract) भी कहते हैं। पशु की आवश्यकता से अधिक कार्बोहाइड्रेट उसके शरीर में पहुँचकर वसा के रूप में परिवर्तित होकर संग्रह होता रहता है और कमी के समय में प्रयोग आता है। दूध देने वाले पशुओं में लैक्टोज (lactose) इसी से बनता है। इस श्रेणी में कुछ अन्य कार्बनिक अम्ल भी सम्मिलित हैं। ये अम्ल दुग्ध वसा की रचना करते हैं। विभिन्न खाद्य पदार्थों में नाइट्रोजन रहित निष्कर्ष की जो मात्रा मिलती है, वह निम्नलिखित है-

अनाज के दाने (cereal grains)	= 60-72%
अनाज के उपजात (cereal byproduct)	= 40-60%
दो दालीय बीज, तेलीय बीज, खली, सूखे घास, भूसा आदि	= 25-50%
हरी घासें, साइलेज	= 5-20%

(b) तन्तुमय पदार्थ (Crude Fibre)—पौधों का ऊपरी भाग जो छूने में कड़ा, लकड़ी जैसा तथा रेशे वाला (Fibrous) होता है, दुष्पचनीय तन्तु कहलाता है। यह कार्बोहाइड्रेट का अघुलनशील भाग है, जो कि अघुलनशील सेल्युलोज (Cellulose) तथा लिग्नीन, पेंटोसंस (Lignin, pentosans) इत्यादि का बना होता है। यह अधिकतर भूसा, सूखी घासों, अनाजों के उपजात जैसे भूसी (bran), छिलका (Husk) इत्यादि में अधिक मिलता है। खाद्य पदार्थों का यह सबसे कम पाचनशील पदार्थ है, परन्तु जुगाली करने वाले पशुओं के लिये महत्वपूर्ण है, क्योंकि उनके पेट (Rumen) को भरने के लिये खाद्य पदार्थों का फूला (Bulky) होना आवश्यक है। पशु द्वारा यह सीधा नहीं पचाया जाता है, परन्तु कुछ विशेष जीवाणु द्वारा जो कि पेट में मिलते हैं, अपनी क्रिया द्वारा इसे साधारण शर्करा तथा वसा अम्लों (Fatty acids) में परिवर्तित कर देते हैं। तन्तुमय पदार्थ (Crude fibre) पेट की दीवालों में तनाव पैदा करता है जिससे संकुचन (Contraction) तथा विमोचन (Repulsion) में मदद मिलती है। इससे पाचक रसों (Digestive juices) के निकलने में भी सहायता मिलती है।

पौधों में दुष्पचनीय तन्तु की मात्रा, उनकी जाति, आकार तथा आयु पर निर्भर करती है। इसलिए बड़े पौधों में छोटे की अपेक्षा तथा पके पौधों में बच्चे पौधों की अपेक्षा अधिक रेशा पाया जाता है। पौधों के तने वाले भाग में अन्य भागों की अपेक्षा अधिक रेशा रहता

है। बीजों तथा अनाजों की बाहरी परत में अधिक रेशा होता है जबकि बीज के भीतर बहुत ही कम होता है। विभिन्न खाद्य पदार्थों में जो दुष्पचनीय तन्तु की मात्रा मिलती है, वह निम्न प्रकार है-

अनाज और बीज की भूसी तथा छिलका	= 40-45%
अनाजों का भूसा	= 35-45%
सूखी घासें, सूखे चारे	= 20-30%

कार्बोहाइड्रेट्स के कार्य (Functions of Carbohydrates)—कार्बोहाइड्रेट के निम्नलिखित कार्य हैं-

(1) कार्बोहाइड्रेट का मुख्य कार्य शरीर को शक्ति प्रदान करना है। एक ग्राम कार्बोहाइड्रेट से 4.1 कैलोरी ऊष्मा उत्पन्न होती है।
(2) शरीर के विभिन्न अंगों के कार्य संचालन के लिए आवश्यक है।
(3) यह उत्पादन एवं नियन्त्रण में सहायक है।
(4) शरीर की आवश्यकता से अधिक खाए हुए कार्बोहाइड्रेट ग्लाइकोजन चर्बी में बदलकर शरीर में जमा होते रहते हैं और कार्बोहाइड्रेट की कमी होने पर शरीर को शक्ति पहुँचाते हैं।
(5) दूध में कुछ चिकनाई तथा मिठास प्रदान करते हैं।
(6) शरीर के ताप को बनाये रखने में सहयोग करते हैं।
(7) यह पशु शरीर (जुगाली वाले) के रूमेन में जीवाणु की वृद्धि एवं विकास में सहायता प्रदान करते हैं।
(8) कम उम्र वाले पशुओं में फॉस्फोरस एवं कैल्सियम लवणों के शोषण में कार्बोहाइड्रेट सहायता करते हैं।
(9) पशुओं के द्वारा कार्बोहाइड्रेट आसानी से पचा लिये जाते हैं।

(iv) विटामिन्स (Vitamins)—पौधों में खनिज लवणों तथा कार्बनिक पदार्थों के अतिरिक्त एक अति सूक्ष्म मात्रा में अन्य पदार्थ भी पाये जाते हैं, जिनकी सामान्य स्वास्थ्य, जीवन निर्वाह, वृद्धि तथा अन्य कार्यों के लिये आवश्यकता होती है, इन्हें विटामिन्स कहते हैं। इनकी कमी शरीर में हो जाने पर अनेक रोग हो जाते हैं। अत: भोज्य पदार्थों द्वारा इनकी पूर्ति होती रहनी चाहिए। ये अन्य खाद्य तत्वों की भाँति शक्ति नहीं देते हैं, परन्तु फिर भी जीवित रहने तथा शरीर में होने वाली विभिन्न क्रियाओं के लिये इनकी सूक्ष्म मात्रा की आवश्यकता होती है।

विटामिन्स को उनकी घुलनशीलता के आधार पर दो भागों में बाँटा गया है। प्रथम जो वसा में घुलनशील होते हैं तथा दूसरे जो पानी में घुलनशील होते हैं। इन श्रेणी में आने वाले विटामिन्स पृथक्-पृथक् होते हैं, जो विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों में पाये जाते हैं और शरीर की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। इनका वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से है-

विटामिन्स (Vitamins)

वसा में घुलनशील (Fat soluble)

1. विटामिन 'A'
2. विटामिन 'D'
3. विटामिन 'E'
4. विटामिन 'K'

पानी में घुलनशील (Water Soluble)

विटामिन 'B'

1. थाइमिन B_1
2. राइबोफ्लेविन-B_2
3. पाइरीडॉक्सिन- B_6
4. निकोटिनिक अम्ल
5. बायोटिन
6. पेण्टोथिनिक अम्ल
7. पैराऐमिनोबेन्जोइक अम्लं
8. फोलिक अम्ल
9. कोलीन
10. इनोसीटॉल
11. विटामिन B_{12}

विटामिन 'C'

उपर्युक्त विटामिन्स विभिन्न खाद्य पदार्थों में विभिन्न मात्राओं में पाये जाते हैं। संक्षेप में इनका वर्णन इस प्रकार है-

वसा में घुलनशील (Fat Soluble)

विटामिन 'A'–

(i) पशु साधन (Animal Sources)–घी तथा तेलों, मछली के तेल, दूध तथा अण्डों व खीस में मिलता है।

(ii) वनस्पति साधन (Vegetable Sources)–अनाजों, हरे दो दालीय चारों, हरी घासों, सूखी घासों, तरकारियों एवं फलों में।

विटामिन 'D'–यह मछली के तेल, घी, अण्डे तथा दूध, मक्खन, सूर्य की रोशनी में, सूखी घास तथा सूर्य की किरणों से मिलता है।

विटामिन 'K'–हरे चारे के सब्जियों में (विशेषकर पत्तियों वाले भाग में) मिलता है।

विटामिन 'E'–हरी पत्तियों, अनाज की भूसी, गेहूँ के अंकुर, दूध, अण्डों, घी।

पानी में घुलनशील (Water Soluble)

विटामिन 'C'–ताजे खट्टे फलों तथा तरकारियों में मिलता है।

विटामिन 'B' काम्प्लेक्स (Vitamin 'B' Complex)–हरी तरकारियों, फलों, दूध तथा दुग्ध पदार्थों गोश्त, अनाजों के अंकुर में मिलता है।

जुगाली करने वाले पशुओं के पेट में उपस्थित जीवाणु भोज्य पदार्थों पर क्रिया करके अनेक विटामिन्स बनाते हैं जिसके फलस्वरूप इन पशुओं के लिये उन विटामिन्स की कमी कभी नहीं होती है। इन पशुओं में केवल विटामिन्स 'A', 'D' की अधिक आवश्यकता पड़ती है।

प्रश्न 14. पशु आहार 'दाना' तथा 'अनाजों के उपजात' को बतलाइए।
Describe about concentrates and grains by products of Animal Food.

उत्तर-

दाना (Concentrates)

पशु आहार का वह भाग जिसमें रेशे की मात्रा 18% से कम होती है तथा प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है, इसमें सम्पूर्ण पाचक तत्व (Total Digestable Nutrients) की मात्रा 60% से अधिक होती है।

यह तथ्य सर्वविदित है, कि केवल मोटे चारे से पशु की कुल पोषक तत्वों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जा सकता। जो उनकी विभिन्न उत्पादक कार्यों के लिए आवश्यक होता है।

दानों को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है-

1. अधिक प्रोटीन वाले दाने (Protein Rich Concentrates)–इसके तहत उन पदार्थों को रखा जाता है, जिनमें पाचक प्रोटीन की मात्रा अन्य दानों की अपेक्षा अधिक होती है। इन दानों की थोड़ी-सी मात्रा से अधिक पाचक तत्वों की पूर्ति होती है।

उदाहरण–विभिन्न दालवाली एवं तेल वाली फसलों की खलियाँ जैसे-बिनौले, अलसी, मूँगफली, तिल, महुआ, सरसों इत्यादि की खलियाँ।

2. पशु उत्पाद–इस प्रकार के दाने पशु एवं उसके उत्पादों से बनाया जाता है, जैसे- रक्त चूर्ण, अस्थि चूर्ण, मछली का चूर्ण, दूध एवं उसके उपजात इत्यादि। इन उत्पादों से पशुओं को पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट्स, लवण, विटामिन्स इत्यादि की प्राप्ति होती है।

3. औद्योगिक उत्पाद–कई उद्योग-धंधों के उप-उत्पाद जैसे-शक्कर फैक्ट्री से प्राप्त होने वाले शीरा में कार्बोहाइड्रेट एवं फॉस्फोरस की पर्याप्त मात्रा होती है।

4. अधिक कार्बोहाइड्रेट युक्त दाने–इस प्रकार के दानों में कुल पाचक तत्व की मात्रा अधिक मिलती है, इसमें स्टार्च अधिक व अपचनीय तन्तु (Crude fibre) कम होता है। ये अधिक स्वादिष्ट, पाचक तथा दस्तावर होते हैं। पशुओं को मुख्यतौर पर मक्का, ज्वार, बाजरा, चना इत्यादि का दाना खिलाया जाता है। इनमें 7% पाचक प्रोटीन तथा 60-70% तक कुल पाचक तत्व होता है। अनाज के दानों में 'विटामिन' B तथा E भी सन्तोषजनक मात्रा में मिलते हैं। पीली मक्का में कैरोटीन अधिक मिलता है।

फलीदार बीजों में प्राय: चना, अरहर, ग्वार, मटर प्रमुख दाने हैं, जो दुधारू पशुओं को खिलाये जाते है। चना प्राय: बैलों, साँडो तथा घोड़ों को खिलाया जाता है, जिससे उनकी कार्य क्षमता बढ़ती है। प्राय: सभी में प्रोटीन और कैल्सियम अधिक होता है। चने में 14 प्रतिशत पाचक प्रोटीन, 77 प्रतिशत कुल पाचक तत्व, अरहर में 13 प्रतिशत पाचक प्रोटीन, 68 प्रतिशत कुल पाचक तत्व, मेथी में 18 प्रतिशत पाचक प्रोटीन तथा 62 प्रतिशत कुल पाचक तत्व मिलते है।

अनाजों के उपजात (Grains By Products)

दाने के रूप में प्रयोग होने वाले उपर्युक्त अनाजों के अनेक उपजात हैं, जो कि पशुओं को खिलाये जाते हैं। संक्षेप में इनका वर्णन निम्नलिखित प्रकार है-

(1) गेहूँ का चोकर (Wheat bran)—यह अनाजों के उपजातों में सबसे अधिक प्रचलित दाना है। यह फार्म के पशुओं के लिए अति उत्तम दाना है। इसमें लगभग 7-10 प्रतिशत पाचक प्रोटीन मिलती है। फॉस्फोरस अधिक होता है, कुल दानों का आधा भाग पशुओं को गेहूँ के चोकर के साथ खिलाया जा सकता है।

(2) चावल का चोकर (Rice bran)—यह अधिकतर घोड़ों, गधों और सुअरों को खिलाया जाता है। यह गेहूँ के चोकर से कम स्वादिष्ट एवं पाचक है तथा पोषक मान भी कम है।

(3) चूनी (Chuni)—फलीदार अनाजों जैसे- चना, मटर, उड़द, मूँग, अरहर से जब दाल बनाई जाती है इनका कुछ भाग टूट जाता है, इसी को चूनी या चूरी कहते हैं। इनमें प्रोटीन अधिक होती है। इनमें खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। भारत में अधिकतर उड़द, मूँग, अरहर की चूनी पशुओं को खिलाई जाती है।

(4) दालों का छिलका (Husk of pulses)—अनेक दालों का छिलका भी पशुओं को खिलाया जाता है। इसमें पाचक प्रोटीन बहुत ही कम या नहीं के बराबर होती है, परन्तु कार्बोहाइड्रेट अच्छी मात्रा में होती है ये काम करने वाले पशुओं का खिलाया जाता है।

प्रश्न 15. पशुओं के निम्नलिखित रोगों के बारे में बतलाइए।
Tell about the following diseases of animals.

(1) दूध बुखार (Milk Fever)
(2) ग्रास टेटनी (Grass Tetany)
(3) रिकेट्स (Rickets)

उत्तर-

(1) दूध बुखार (Milk Fever)

दूध का बुखार जिसे हारपोकैल्सीमिया भी कहा जाता है आमतौर पर प्रसव में 48 घंटों के भीतर यह रोग होता है। ऐसा तब होता है जब रक्त में बड़ी मात्रा में कैल्शियम निकाला जाता है और कोलोस्ट्रम के उत्पादन के लिए स्तन ऊतक में उपयोग किया जाता है। लगभग पाँच वर्ष को परिपक्व गायें दुध बुखार के प्रति अधिक संवेदनशील होती है।

दुध बुखार की घटना को चिकित्सीय रूप से पहचाने जाने योग्य तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है-

प्रथम चरण की विशेषता

(1) सिर बाँव
(2) माँसपेशियाँ काँपना
(3) चलने में कठिनाई
(4) भूख कम लगाना
(5) रूमेन गतिविधि में कमी

दूसरे चरण की विशेषता

(1) सूखा थूथन
(2) उठने-बैठने में असमर्थ
(3) बढ़ी हृदय गति की दर

तीसरे चरण की विशेषता

(1) लेटना
(2) हृदय गति 120 बी.पी.एम तक
(3) सूजन

उपचार—दूध के बुखार के प्रारंभिक चरण का इलाज मौखिक रूप से कैल्शियम देकर किया जा सकता है। वाद के चरणों में अंत: शिरा कैल्शियम की आवश्यकता होती है। अंत: शिरा उपचार एक योग्य पशु चिकित्सक द्वारा किया जाना चाहिए। समय पर उपचार महत्वपूर्ण है अन्यथा संचार विफलता या श्वसन पतन के कारण गाय की मृत्यु हो सकती है।

(2) ग्रास टेटनी (Grass Tetany)

ग्रास टेटनी रक्त में मैग्नीशियम से जुड़ी एक घातक बीमारी है। इसमें पशु लगातार मूत्र, मल तथा दूध में मैग्नीशियम खो-खो देता है इसलिए इसे दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने भोजन में मैग्नीशियम की आवश्यकता होती है।

किसी जानवर के रक्त में मैग्नीशियम की कमी, भोजन में मैग्नीशियम के स्तर को कम करने और/या कम मैग्नीशियम अवशोषण के कारण हो सकती है।

प्रमुख लक्षण—

(1) ग्रास टेटनी से पीड़ित पशु प्राय: मृत पाए जाते हैं।
(2) जानवर के बगल में जमीन पर ऐसे निशान हो सकते है जो यह दर्शाते है कि वे मरने के पहले लेग पैडलिंग कर रहे थे।
(3) शुरूआती लक्षणों में माँसपेशियों में मरोड़, अतिंरजित जागरूकता और एक कठोर चाल के साथ उत्कृष्टता शामिल है।

(4) जानवर आक्रामक दिखाई दे सकते है और सरपट दौड़ते, उछलते या लड़खड़ाते हुए आगे बढ़ सकते है।

उपचार तथा नियंत्रण–

(1) ऊर्जा और चारे का सेवन बढ़ाइए।

(2) अच्छी गुणवत्ता वाली घास तथा चारा उपयुक्त है।

(3) स्तनपान कराने वाली गायों को उच्च लेग्यूम और उच्च शुष्क स्थानों पर स्थानांतरित करना।

(4) चूने या डोलोमाइट के साथ मिट्टी की अम्लता को ठीक करना।

(3) रिकेट्स (Rickets)

रिकेट्स हड्डी की वृद्धि प्लेट की एक बीमारी है और यह केवल युवा, बढ़ते जानवरों को प्रभावित करती है। सबसे प्रमुख कारण फास्फोरस या विटामिन डी की आहार संबंधी अपर्याप्तता है। कैल्शियम की कमी भी रिकेट्स का कारण बन सकती है और जबकि यह स्वाभाविक रूप से शायद ही कभी होता है, कैल्शियम की कमी वाले खराब संतुलित आहार को इस बीमारी का कारण माना जाता है जैसा कि अधिकांश आहार आस्टियोडिस्ट्रोफी का कारण बनते हैं, असामान्य कैल्शियम, फास्फोरस अनुपात सबसे अधिक संभावना है।

प्रमुख लक्षण–

(1) हड्डी में दर्द

(2) कठोर चाल

(3) मेटाफिसेस के क्षेत्र में सूजन

(4) उठने में कठिनाई

(5) झुके हुए अंग

(6) पैथालॉजिकल फ्रैक्चर

उपचार–

(1) अंतर्निहित आहार या विटामिन डी की कमी को पहचाने और उसका समाधान करें।

(2) आहार में सुधार रिकेट्स का प्राथमिक उपचार है। जानवरों को सूरज की रोशनी (पराबैंगनी विकिरण) के संपर्क में आने से D_3 अग्रदूतों का उत्पादन भी बढ़ जाएगा।

प्रश्न 16. डेयरी पशुओं के परिवहन पर एक लेख लिखिए।
Write an article on transportation of Dairy cattle.

उत्तर- पशुओं को सुरक्षित एवं स्वस्थ स्थिति में उनके गंतव्य तक पहुँचाना परिवहन के दौरान वजन में आर्थिक हानि को रोकने और मृत्यु दर को रोकने के लिए आवश्यक है।

जानवरों का परिवहन आमतौर पर जानवरों के स्वामित्व में परिवर्तन के साथ मेल खाता है जिससे जानवरों के कल्याण की जिम्मेदारी से समझौता किया जा सकता है। परिवहन प्रक्रिया जानवरों को इकट्ठा करने, लादने-उतारने और उन्हें एक नए अपरिचित वातावरण

में रखने से शुरू होती है। परिवहन के प्रति जानवरों की प्रतिक्रिया मध्यम और आसानी से पहुँचाये जाने योग्य तनाव से लेकर अत्यधिक प्रतिक्रिया तक भिन्न होती है, जो आर्थिक नुकसान के बारे में बड़ी चिंता का कारण बनती है।

परिवहन के दौरान जानवरों को विभिन्न तनाव कारकों जैसे गर्मी, ठंड, नमी, शोर, ओलावृष्टि, हवा का वेग, गति आदि से अवगत कराया जाता है।

पशुओं के परिवहन का तरीका

1. पैर से
2. सड़क मार्ग से
3. रेल द्वारा
4. हवाई मार्ग से
5. जहाज से
6. नावों द्वारा

(1) पैरों द्वारा परिवहन–भारत में परिवहन का सबसे आम साधन पैदल और सड़क मार्ग है।

यह कम दूरी के लिए दुधारू पशुओं के परिवहन का सबसे किफायती तरीका है। मवेशियों को एक दिन में 30 से 35 किमी. तक आसानी से हांका जा सकता है। गर्मियों में दिन के अधिक गर्म हिस्से में जानवरों की आवाजाही से बचना चाहिए। जहां तक संभव हो जानवरों को कठोर धातु वाली सड़कों से बचते हुए, सड़क के दोनों ओर नरम जमीन पर चलाना चाहिए।

घूमने वाले जानवरों के उस क्षेत्र में संक्रामक रोग फैलाने के खतरे की ऐसे मार्गों पर अधिकारियों द्वारा उचित जांच की जानी चाहिए। चलते समय जानवरों के शरीर का वजन कम हो जाता है। सही ढंग से भोजन और पानी देने का समय निर्धारित करके इस नुकसान को न्यूनतम किया जा सकता है।

(2) सड़क मार्ग से परिवहन–सड़क मार्ग से पशुओं के परिवहन के निम्नलिखित फायदे हैं–

(i) फार्म पर लोडिंग और गंतव्य तक सीधा परिवहन।

(ii) बार-बार संभालने का अभाव और इससे जुड़ी गड़बड़ी।

(iii) गंभीर वजन घटाने से बचाव।

1. ट्रक की बॉडी को झाड़ या ब्रश से साफ करें।
2. रेत या पुआल का अच्छा फर्श उपलब्ध कराएं।

(ए) रेत का फर्श–गर्म मौसम में डेयरी पशुओं को ठंडा रखने के लिए 10 से 12 सेमी गहरे रेत के फर्श को गीला रखा जा सकता है।

(बी) पुआल बिस्तर–विशेष रूप से ठंड के मौसम में ट्रक के बिस्तरों पर 15 सेमी पुआल का बिस्तर बिछाएं।

3. ट्रक को लोडिंग रैंप पर ले जाएं।
4. लोडिंग शूट या रैम्प पर पिछला दरवाजा खोलें और जानवर को संभावित चोट से बचाने के लिए ट्रक के दरवाजे और बॉडी के बीच के गैप को तख्ते से ढक दें।
5. जानवर को पीछे से धीरे से धक्का देकर ट्रक के अंदर ले जाएं।
6. बांस से प्रत्येक जानवर के लिए अलग-अलग विभाजन बनाएं।
7. सुनिश्चित करें कि ट्रक चलते समय परिचारक हर समय मौजूद रहे।

सामान्य सावधानियां

1. यात्रा के दौरान पशुओं को खिलाने, पानी पिलाने और दूध निकालने के लिए स्थानीय चारा और बर्तन ले जाना आवश्यक है, जिसके लिए वैगन या ट्रक लोड के साथ दो अनुभवी परिचारक होने चाहिए।
2. दस्त की सूजन और चोट के लिए प्राथमिक चिकित्सा दवाएं अपने साथ रखनी चाहिए।
3. स्टॉक को हर 12 घंटे में पानी देना चाहिए। एक बार सुबह और एक बार शाम को और जब संभव हो तो इन अंतरालों पर भी पानी देना चाहिए।
4. तीन दिन से अधिक की यात्रा पर भोजन और आराम के लिए सामान उतारना अनिवार्य होना चाहिए।
5. ट्रक द्वारा पशुओं को 600 से 700 किमी. से अधिक दूरी तक नहीं ले जाया जाना चाहिए।
6. लोडिंग से पहले आखिरी 6 घंटों के दौरान पानी रोकने की सलाह दी जा सकती है, जिसके परिणामस्वरूप ट्रक का फर्श सूख जाएगा, जिससे यात्रा के दौरान मवेशियों को बेहतर पैर रखने का मौका मिलेगा।
7. अचानक रुकने से बचने के लिए ड्राइवर को तेज गति से गाड़ी न चलाने का निर्देश दें। इसके अलावा तेज और अचानक मोड़ से भी बचना चाहिए।
8. लोडिंग और अनलोडिंग के समय रैंप का उपयोग किया जाना चाहिए।

स्टोकिंग घनत्व—यह पशु कल्याण के लिए महत्वपूर्ण है। एक साधारण माल ढोने वाला ट्रक उनकी उम्र और स्थिति के आधार पर 4 से 5 मवेशियों को ले जा सकता है। स्टॉकिंग घनत्व उच्च (0.8 मीटर^2 / गाय), मध्यम (1.16 मीटर^2 / गाय) और निम्न (1.39 मीटर^2 / गाय) हो सकता है। कम घनत्व पर मवेशी बहुत अच्छी तरह से यात्रा करेंगे जब तक कि खराब ड्राइविंग के कारण उन्हें अचानक रोका न जाए। उच्च घनत्व में जानवर शेष जानवरों द्वारा फर्श पर फंस जाते हैं।

स्थायी अभिविन्यास—डेयरी मवेशियों के ट्रक पर आमने-सामने होने की सबसे आम दिशा या तो गति की दिशा के लंबवत या समानांतर होती है; लंबी यात्राओं पर सबसे आम खड़े होने का झुकाव यात्रा की दिशा के लंबवत होता है।

संतुलन का रखरखाव—डेयरी पशु परिवहन में चलते वाहन पर संतुलन खोना एक प्रमुख विचार है। संतुलन की छोटी-मोटी हानि नियमित रूप से होती रहती है और मवेशी अपना संतुलन वापस पाने के लिए तुरंत अपना पैर हिलाकर प्रतिक्रिया करते हैं। संतुलन का अधिकांश नुकसान गति तोड़ने, गियर बदलने और मोड़ने से होता है।

सड़क परिवहन में मवेशियों की भलाई का निर्धारण करने वाले प्रमुख कारक वाहन, डिजाइन, स्टॉकिंग घनत्व, वेंटिलेशन, सड़कों की गुणवत्ता और ड्राइविंग के मानक हैं। मवेशियों के परिवहन के लिए ट्रक की अधिकतम गति 20 किमी प्रति घंटा है।

(3) रेल द्वारा परिवहन—लंबी दूरी के लिए, रेल परिवहन रखरखाव और हैंडलिंग शुल्क, और अन्य आकस्मिक खर्चों के साथ-साथ वजन घटाने और मौतों से भी बचत कराता है। पशुधन ले जाने वाले रेलवे वैगनों में हमेशा हवा के मुक्त आवागमन के लिए छत होनी चाहिए और उनका फर्श बैटनयुक्त या फिसलन रहित होना चाहिए। भारत में अच्छे परिवहन के लिए उपयोग किए जाने वाले वैगनों का उपयोग आमतौर पर जानवरों के परिवहन के लिए भी किया जाता है।

वेंटिलेशन के लिए साइड के दरवाजों को खुला छोड़ देना चाहिए। ट्रेन चलते समय जानवरों को अपने पैरों पर खड़ा रखने के लिए बांस या लकड़ी के खंभों का उपयोग करके उपयुक्त आकार का विभाजन किया जाना चाहिए। सींग वाले मवेशियों को वैगन के किनारे सींगों से सुरक्षित किया जाना चाहिए; उन्हें सिर से पूंछ तक खड़ा होना चाहिए ताकि वैकल्पिक जानवर विपरीत दिशा का सामना करें।

(I) कंसाइनर को जानवरों की बुकिंग के लिए प्रेषण स्टेशन के स्टेशन अधीक्षक को 24 घंटे का नोटिस देना होगा। उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वैगन को खेप भेजने वाले के पास रखे जाने के बाद वह दिन के उजाले के 8 घंटे के भीतर जानवरों को लाद देगा। निर्दिष्ट 8 घंटे से अधिक की देरी पर वैगन की क्षमता के अनुसार विलंब शुल्क लिया जाएगा। यही स्थिति अनलोडिंग पर भी लागू होती है।

(II) पारगमन के दौरान, मवेशियों को मालिक के खर्च पर परिचारकों द्वारा खाना, पानी पिलाया और देखभाल की जाती है।

पारगमन रेलवे परमिट में–

(a) पर्याप्त मात्रा में चारा जिसे वैगन में आसानी से रखा जा सके।
(b) प्रत्येक 160 किमी की यात्रा के लिए प्रति वयस्क डेयरी पशु 5 किलो अनाज।
(III) माल ढुलाई का पूर्व भुगतान नकद में करना अनिवार्य है।
(IV) पारगमन में मवेशियों की सारी सुरक्षा प्रेषक पर निर्भर करती है।
(V) रेल द्वारा परिवहन की लागत में शामिल हैं-
(a) वैगन के लिए रेलवे माल ढुलाई।
(b) पारगमन के दौरान पशु के भोजन का खर्च।
(c) परिचारक रेलवे किराया।
(d) पर्यवेक्षण शुल्क।
(e) विविध व्यय।

(VI) मवेशियों को 4 पहियों या 6 पहियों वाले वैगनों में ले जाया जाता है।

1. गंदगी और धूल को साफ करने के लिए वैगन को साफ करें।
2. वैगन को अच्छी तरह धोएं और 2 प्रतिशत फिनाइल से कीटाणुरहित करें।
3. जैसा कि ऊपर बताया गया है, अच्छा बिस्तर बिछाएं।
4. रेत के फर्श या पुआल के बिछावन पर चूना छिड़क कर फैला दें।
5. जानवरों को सुरक्षित आधार प्रदान करके धीरे-धीरे वैगन के अंदर ले जाएं। वजन संतुलित करने के लिए दोनों तरफ समान संख्या में जानवर रखें।
6. वैगन में दिए गए खांचे में दोनों तरफ दो-दो बांस लगाएं।
7. रास्ते में पीने के लिए टब में पानी जमा करके रखें।
8. परिचारकों को निर्देश दें कि वे नियमित अंतराल पर गाय का दूध दुहें और जितनी बार संभव हो पीने के लिए पानी दें।
9. अधिकारियों को निर्देश दिया जाता है कि वे मवेशियों वाले वैगन की ढीली शंटिंग न करें।

सावधानियां

1. लोड करते समय जानवरों को सुरक्षित पैर प्रदान करें क्योंकि वे वस्तुओं को हिलाने से डरते हैं। इसलिए स्किडिंग को रोकने के लिए लोडिंग च्यूट और रैंप का उपयोग किया जाना चाहिए।
2. ट्रक के वैगन और बॉडी की जांच करें कि वहां कोई उभरी हुई कील या वस्तु तो नहीं है जिससे जानवरों को चोट लग सकती है।
3. मवेशियों को लादने के लिए धैर्य के साथ धीरे-धीरे ले जाना चाहिए। उन्हें जल्दबाजी या उत्तेजित नहीं होना चाहिए. जानवरों को अकेला करने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वे समूह छोड़ने से इनकार कर सकते हैं।
4. बैलों का परिवहन व्यक्तिगत रूप से किया जाना चाहिए।
5. सुविधा के लिए गायों को सूखने पर ही परिवहन करना चाहिए।
6. वैगन में गायों को एक या दूसरे सिरे से बांधा जा सकता है लेकिन छोटे जानवरों को खुला रखा जा सकता है।
7. फीड सीमित करें, लोड करने से पहले पशु को भारी मात्रा में भोजन नहीं देना चाहिए। इसके अलावा, पेट फूलने के जोखिम को रोकने के लिए परिवहन के दौरान खाद्य पदार्थों में अचानक बदलाव से बचना चाहिए।
8. अटेंडेंट को निर्देश दें कि वैगन में धूम्रपान न करें या खाना न पकाएं, खासकर जब जानवरों के लिए चारे के रूप में घास ले जाया जा रहा हो।
9. अप्रत्याशित परिस्थितियों और प्राकृतिक आपदा के कारण होने वाले नुकसान से सुरक्षा के लिए परिवहन से पहले पशुओं का बीमा कराएँ।
10. वैगन या ट्रक को एंटीसेप्टिक जैसे कार्बोलिक, क्रेओसोल, लाइ सॉल्यूशन आदि से अच्छी तरह कीटाणुरहित करें।
11. ट्रक या वैगन में अधिक भीड़-भाड़ करने से बचें।

12. परिवहन से एक सप्ताह पहले पशु को रक्तस्रावी सेप्टीसीमिया का टीका लगवाना चाहिए।
13. नर्वस प्रकार के जानवरों को रिजर्विंग जैसी शांत करने वाली दवा 2.5 मिलीग्राम प्रति 100 किलोग्राम वजन के हिसाब से दी जा सकती है।
14. अधिकारियों द्वारा रास्ते में किसी भी कानूनी कार्रवाई से बचने के लिए माल भेजने वाले द्वारा जानवरों के परिवहन का प्रमाण पत्र दिया जाता है।

प्रश्न 17. पशुओं के प्रमुख बीमारियों तथा उनका उपचार बतलाइए।
Explain the main diseases of animals and their treatments.

उत्तर-

पशुओं के प्रमुख बीमारियाँ

(1) खुरपका-मुँहपका रोग
(Foot and Mouth Disease)

इस रोग को एप्थस ज्वर (apthous fevor) खूरा रोग, खगंवा आदि नामों से भी जाना जाता है यह एक घातक तथा अत्यधिक छूत वाली बीमारी है जो मुख्य रूप से विदेशी तथा संकर नस्ल के फटे खुर वाले पशुओं (cloven footed animals) में होती है। यह सभी आयु वाले पशुओं में होती है। यह सामान्यत: गायों, बैलों तथा साँड़ों में काफी पायी जाती है। यह बीमारी भैंस, भेड़ों तथा बकरियों में भी होती है परन्तु इनमें कभी-कभी ही संक्रमण होता है। बकरियाँ इस बीमारी के लिए भेड़ों की तुलना में अधिक ग्राही होती हैं। इस बीमारी में पशु के मुँह, पैरों तथा थनों पर आशयिक स्फोटक (vesicular exanthema) या छाले पाये जाते हैं।

रोग का कारण (Epidemiology)—यह रोग पिर्कोनाविराइडी कुल के जीनस (genus) एप्थोवायरस (Apthovirus) द्वारा होता है। यह विषाणु पशु विषाणुओं (animals viruses) में सबसे छोटे आकार वाले विषाणुओं में से एक है। यह सात प्रकार का होता है–0, A, C, Asia – 1, SAT – 1, SAT - 2, एवं SAT - 3. O, A, C तथा Asia -1 प्रकार के विषाणु से यह बीमारी भारतीय महाद्वीप में सामान्यत: होती है जबकि SAT - 1, SAT – 2 तथा SAT - 3 प्रकार के विषाणुओं से अफ्रीकी देशों में बीमारी फैलती है। 1998 में यह खोज की गयी कि खुरपका-मुँहपका रोग वायरस से होता है।

बीमार पशुओं के मुँह, पैर तथा थनों पर उपस्थित छालों में भरा पानी (vesicular fluid) में विषाणुओं की सर्वाधिक संख्या पायी जाती है। छाले फूँटने पर ये विषाणु बाहर आते हैं तथा कई सप्ताह तक पशु के शरीर (बालों), चारों पर जीवित रहते हैं। ये विषाणु बीमार पशु के लार (saliva), पेशाब, दूध तथा गोबर में उपस्थित रहते हैं। अत: बीमार पशु तथा इसका पूरा पर्यावरण संक्रमण का गंभीर स्रोत होता है। ये विषाणु स्वस्थ पशु के रक्त में मुख, जीह्वा, आँत, खुर आदि पर कटे स्थान या घाव के रास्ते प्रवेश करके चले जाते हैं।

लक्षण प्रकट होने की अवधि (Incubation period)—प्राकृतिक संक्रमण (natural infection) की स्थिति में गायों तथा भैंसों में दो से पाँच दिनों के अन्दर इस रोग के लक्षण का प्रकटीकरण हो जाता है। सुअरों में लक्षण प्रकट होने की अवधि 24 से 48 घंटे है।

लक्षण (Symptoms)—पशु के शरीर का तापमान बढ़ने लगता है। पशु के शरीर पर विभिन्न अंगों; जैसे- मुँह, पैरों तथा थनो पर छाले या फफोले (vesicles) पड़ जाते हैं। ये फफोले फूटकर लाल फोड़े (red ulcers) तथा घाव का रूप ले लेते हैं।

मुँह में फफोले पड़ने के कारण पशु खा नहीं पाता तथा चटकारा ध्वनि (smacking sound) निकालता है। पशु सुस्त पड़ जाता है। पशु जुगाली करना बंद कर देता है तथा अत्यधिक लार (excessive salivation) टपकाता है। पशु बार-बार जमीन पर पैर पटकता है। दुग्ध उत्पादन बहुत घट जाता है।

गर्भित पशुओं में गर्भपात हो जाता है। वैसे इस बीमारी से छुटकारा लगभग तीन सप्ताह में हो जाता है लेकिन घावों में अन्य जीवाणुओं द्वारा समयानुवर्ती संक्रमण (opportunistic infection) की सम्भावना बढ़ जाती है। अत: ऐन्टीबॉयोटिक उपचार की सलाह दी जाती है।

रोग की पहचान (Diagnosis)—

1. मुख तथा पैरों पर छालों में तेजी से फैलना इस बीमारी के लाक्षणिक गुण (Characteristic feature) हैं। इस बीमारी का परीक्षण जीह्वा एपीथिलियम ऊतकों अथवा पैर के घावों से लिए गए पदार्थो के पूरक-निर्धारण परीक्षण (complement fixation test) द्वारा किया जाता है।
2. उपयुक्त कोशिका संवर्धन माध्यम में वायरस की वृद्धि कराकर तथा उसके विशिष्ट टाइप एन्टीजेन से अभिक्रिया कराकर उसकी टाइप की पहचान की जा सकती है।

उपचार (Treatment)—खुरपका-मुँहपका रोग के उपचार की कोई विशिष्ट दवा उपलब्ध नहीं है। ऐन्टीबायोटिक दवाओं के प्रयोग तथा ऐन्टीसेप्टिक घोलों से घावों को धोने की सलाह समयानुवर्ती संक्रमण (opportunistic infection) को रोकने के लिए दी जाती है। इससे घाव भरने में आसानी होती है। इसके लिए देशी इलाज के रूप में पैर के घावों के ऊपर कोलतार (coal-tar) तथा कॉपर सल्फेट के 5 : 1 अनुपात में मिश्रण को पट्टी के रूप में बाँधा जाता है।

बचाव एवं नियंत्रण (Prevention and Control)—बचाव ही रोग नियंत्रण का प्रमुख उपाय है। विदेशों में इस रोग से ग्रसित सभी पशुओं का कत्ल (slaughtering) कर दिया जाता है तथा उन पशुओं की लाशों (carcasses) 5 मी. की गहराई पर गाढ़ दिया जाता है तथा उनके ऊपर चूना डाला जाता है। पशु से सम्बन्धित सभी बर्तनों, नादों, कपड़ों आदि का पूर्णत: निजर्मीकरण कर दिया जाता है। परन्तु हमारे देश में पशुओं के कत्ल (slaughtering) का प्रावधान नही है।

हमारे देश में चयनित टीकाकरण (selective vaccination) ही उपयोगी तरीका है हमारे देश में दो दशकों में एक चतुर्वैलेन्स बकरी-वक्क कोशिका संवर्धित तथा ऐलुमिनियम डाइ ऑक्साइड जेल अधिशोषित खुरपका-मुँहपका टीका विकसित किया गया है। यह एक प्रभावी टीका है। यह सलाह दी जाती है कि शुरू में 6 माह में दो बार तथा बाद में प्रतिवर्ष यह टीका दुधारू पशुओं को दिया जाय।

पैर डुबकी (Foot Bath)—हर पशुशाला तथा प्रमुख पशु चारागाहों पर फुट बाथ बनाने से इस बीमारी के संक्रमण को रोका जा सकता है। फुट बाथ की लम्बाई 12 फुट, चौड़ाई 3 फुट तथा गहराई एक फुट रखी जाती है। इस गड्ढे में फिनाइल अथवा तूतिया ($CuSO_4$) का 1% घोल भरा जाता है। सुबह-शाम पशुओं को फुट बाथ से होकर गुजारना चाहिए। इससे इनके खुरों में दवा लग जाती है।

एपोथाइजेशन (Apothysation)—यह पशुओं में प्रतिरक्षण विकसित करने की एक विधि है। यह खुरपका-मुँहपका में काफी प्रभावी होती है। खुरपका-मुँहपका रोग जब फैल रहा हो तब बीमार पशु के मुख से थोड़ी-सी लार लेकर स्वस्थ पशु के मुँह पर लगा दी जाती है। इस विषाणु का स्वस्थ पशु के शरीर में हल्का (attenuated) संक्रमण हो जाता है जिससे इस रोग के विरुद्ध प्रतिरक्षा (immunity) विकसित हो जाती है। अब स्वस्थ पशु में इस बीमारी का संक्रमण नहीं हो पाता।

(2) गलघोंटू रोग
(Haemorrhagic Septicaemia)

इस रोग को पाश्चुरेलोसिस (Pasteurellosis), घुर्रका, घोटुआ तथा नाविक ज्वर के नाम से भी जाना जाता है। यह एक छूतवाला घातक रोग है। यह रोग प्राय: गाय, भैंसों में होता है, परन्तु भेड़ एवं बकरियों में भी पाया जाता है। भारत में यह रोग प्राय: नमी वाले क्षेत्रों में होता है। यह हर आयु समूह के पशुओं में होता है, परन्तु युवा पशुओं में अधिक होता है। उच्च ज्वर, आविषरक्तता तथा अत्यधिक रक्त स्राव इस बीमारी के प्रमुख लक्षण हैं। यह एक मौसमी बीमारी है।

रोग का कारण (Cause of the disease)—यह रोग मुख्यत: पाश्चुरेला मल्टोसीडा (Pasteurella multocida) टाइप 1 एवं 4 जीवाणु द्वारा होता है। गायों में इस रोग का कारक इस जीवाणु का P boviseptica रूप तथा भैंसों में P. buballiseptica रूप हैं। यह जीवाणु केप्सूल द्वारा घिरा एक ग्राम निगेटिव (gram - ve) कोकस-वैसिलस (Coccus-bacillus) प्रकार का है। इसमें स्पोर्स नहीं बनते (Non-spore forming)।

रोग का संचारण (Transmission)—इस रोग के जीवाणु (विशेषकर थोरैसिस रूपी संक्रमण वाले) पशुओं के श्वसन नाल में सुषुप्तावस्था में पड़े रहते हैं तथा इनके श्वास, कफ या छींकने के साथ बाहर आते हैं तथा सम्पर्क में आने वाले स्वस्थ पशुओं के श्वास के साथ उनके शरीर में चले जाते हैं। यदि पशु रोग ग्राही है तो उसमें ये रोग पैदा करते हैं। ये जीवाणु स्वस्थ शरीर में तेजी से वृद्धि करते हैं तथा समुचित परिस्थितयों में घातक संक्रमण उत्पन्न करते हैं। ऐसी परिस्थितियों में निम्नलिखित कारक सहायक होते हैं-

(i) पशु की तनावपूर्ण स्थिति, (ii) वातावरण में नमी, (iii) पशुओं के अत्यधिक सड़कों पर चलने या बंद स्थान पर बंधे रहने, (iv) अन्य रोगों के प्रति टीकाकरण के बाद तथा (v) समवर्ती विषाणु संक्रमण।

रोगनिरोधी (resistance) वाहक (carrier) पशु में उपस्थित जीवाणु जब रोग सुग्राही (susceptible) पशु में छूत द्वारा प्रवेश करते हैं तो उनमे रोग पैदा करते हैं। बरसात के मौसम में रोग पैदा होने तथा संक्रमण की पुनरावृत्ति काफी बढ़ जाती है।

लक्षण (Symptom)—इस बीमारी का संक्रमण तीन प्रकार का होता है- (i) अति तीव्र संक्रमण तथा (ii) तीव्र संक्रमण की स्थिति में क्रमश: लक्षण प्रकट होने के पूर्व अथवा

तुरन्त बाद पशु की मृत्यु हो जाती है। परन्तु (iii) कम तीव्र अथवा थोरेसिस प्रकार की स्थिति में पशु में लक्षण प्रकट होते है तथा 3 या 4 दिनों के बाद पशु की मृत्यु होती है।

पशु के शरीर का तापमान बढ़ जाता है (लगभग 105°F से 107°F तक)। पशु सुस्त पड़ जाता है। पशु के झालर कंठ तथा निचले जबड़े के बीच, जीभ आदि पर सूजन बढ़ जाती है तथा ये भाग फूलकर कड़े हो जाते हैं। युवा पशुओं का पूरा सिर फूल जाता है। मुँह से अत्यधिक लार तथा नाक से मोटी म्यूकस निकलती हैं। जीभ निकलकर बाहर आ जाती है तथा इसका रंग गहरा और चमकीला दिखता है। पशु की साँस तेज हो जाती है तथा साँस लेने में कठिनाई के कारण पशु घुर्र-घुर्र (grunting sound) की आवाज करता है। यह स्थिति गलघोंटू कहलाती है। पेट और आँतों में सूजन (gastroenteritis) आ जाती है तथा दस्त (diarrhoea) तथा पेचिस (dysentery) के लक्षण दिखते हैं। इन लक्षणों के प्रकट होने के 24 या 48 घण्टों के बीच पशु की मृत्यु हो जाती है। इस रोग की मृत्यु दर 70-100% होती है। गर्दन तथा सिर में रक्त के जमा होने से सूजन आना इस रोग का प्रमुख लक्षण हैं।

रोग की पहचान (Diagnosis)—मृत पशुओं के शल्य परीक्षण में निम्नलिखित लक्षण दिखते हैं- (i) पेट की प्लूरा भित्ति तथा हृदय की पेरिकार्डियल गुहा में रक्त रंजित द्रव का भरना, (ii) इन्डोकार्डियम के अधो सेरोसा से रक्त स्राव होना, (iii) तिल्ली में कोई सूजन नहीं (एन्थ्रैक्स रोग से विभेदक गुण), (iv) पशु के आन्तरिक अंगों से लिए गए रक्त की संवर्धन परीक्षण में माइक्रोस्कोप से देखने पर द्वि-ध्रुवीय (bipolar) जीवाणु कोशिकाओं का पाया जाना।

रोग का उपचार (Treatment)—यदि रोग की पहचान शुरुआती दौर में हो जाय तो अग्रलिखित इलाज की संस्तुति की जाती है-

(i) पशु को ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन तथा सल्फामेथाजीन के घोल (33%) की सुई देना अधवा टेबलेट देना।

(ii) संक्रमण की आशंका पर सम्पर्क में आने वाले पशुओं को एच.एस. सीरम का इन्जेक्शन देना चाहिए।

बचाव एवं नियंत्रण (Prevention and control)—यह एक मौसमी बीमारी है जो मानसून के समय में फैलती है। मानसून के समय रोग निरोधक (prophyllactive) उपाय करना इस बीमारी के बचाव का प्रमुख उपाय है। इस समय पशुओं को दो प्रकार के टीके देने चाहिए- (i) फिटकरी संघनित टीका तथा (ii) तेल एडजुवैन्ट टीका (Oil adjuvant vaccine)।

(3) टिम्पनी रोग

रूमिनल टिम्पनी, जिसे रूमिन ब्लोट के नाम से भी जाना जाता है, जुगाली करने वाले जानवरों की एक बीमारी है, जो रूमेन में गैस की अत्यधिक मात्रा की विशेषता है। रूमिनल टिम्पनी प्राथमिक हो सकती है जिसे झागदार ब्लोट के रूप में जाना जाता है या माध्यमिक जिसे फ्री गैस ब्लोट के रूप में जाना जाता है। रूमेन में जुगाली करने वालो द्वारा खाया गया भोजन रोगाणुओं द्वारा किण्वित होता है यह किण्वन प्रक्रिया लगातार गैस पैदा

करती है जिसका अधिकांश भाग उकार द्वारा रूमेन से बाहर निकाल दिया जाता है रूमेन टिम्पनी तब होता है जब यह गैस रूमेन में फंस जाती है।

झागदार ब्लोट में किण्वन द्वारा उत्पन्न गैस रूमेन में किण्वन सामग्री के भीतर फंस जाती है जिससे झाग का निर्माण होता है है जिसे डकार से नहीं निकाला जा सकता है। मवेशियों में यह रोग तब उत्पन्न होता है जब कोई जानवर आसानी से किण्वित होने वाले पौधों जैसे फलियाँ, अल्फाल्फा, लाल तिपतिया या सफेद तिपतिया को बड़ी मात्रा में खाता है। मवेशियों में पेट फूलने के मुख्य लक्षण पेट के बाई ओर का फैलान, डिस्पेनिया (साँस लेने में कठिनाई) और गंभीर परेशानी है यदि गैस जमा होती रहती है तो पेट का दाहिना भाग भी फूल सकता है और लक्षण शुरू होने के 3-4 घंटों के भीतर मवेशियों की मृत्यु हो सकती है।

इलाज-

(1) ट्रोकार या कैनुला के माध्यम से गैसों को निकालना।

(2) रूमिनल डाइजेस्टा को हटा दें।

(3) सोडियम बाइ कारबोनेटे।

(4) नक्स बोमिका।

(5) मेडी ओरल (एंटीफेमिंग एजेंट) 10 मिली. 250 मिलीमीटर गर्म पानी में पशु को भिगोएँ। यदि एंटीफोमिंग एजेन्ट उपलब्ध नहीं है, तो वनस्पति तेल का उपयोग किया जा सकता है।

(4) रूमेन में अफरा रोग

रेतिकुलुम-रयुमन में सूक्ष्मजीवियों द्वारा भोजन की किंवता से उत्पन्न गैसों के जमाव से रियुमन के अत्यधिक फैलाव होने से अफरा हो जाता है। रयुमन में सूक्ष्मजैविक पाचन से गैस बनना एक आम प्रक्रिया है जो लगातार होती रहती है। गैस का उत्पादन दर पशु द्वारा ग्रहण किये जाने वाले आहार, उसके प्रकार एवं संरचना पर निर्भर करते हैं। लेकिन यह भी कहना उचित है कि रियुमन में गैस बनना एवं अफरा होने का कोई गहन सम्बन्ध नहीं है। अपर्याप्त मात्रा में रयुमन से बहिर्गमन ही नहीं बल्कि रयुमन में उत्पन्न गैस आमतौर पर तीन रास्तों से बहिर्गमन करती है। सबसे ज्यादा हिस्सा डकार से जाता है जोकि साधारणतया अहम प्रतीक है। झागदार की अवस्था में बाई कोख में थप्पड़ मारने से धीमी आवाज आती है जबकि अनुपूरक अफारे में ढोल जैसे पशु बेचैन हो जाता है और जल्दी-जल्दी खड़ा होता है और बैठता है, अपने पेट पर लात मारता है और अनेक समय दु:ख कम करने के लिए जमीन जीभ निकालना, सर को निकालना इत्यादि लक्षण दिखाई देते हैं। आरंभिक अवस्था में रयुमन की गतिविधि अत्यधिक बढ़ जाती है लेकिन बाद में रयुमन के अत्यधिक फैलाव से गतिवधि कम हो जाती है। तत्पश्चात पशु धराशयी हो जाता है और अगर ठीक ध्यान न दिया जाए तो पशु की मृत्यु भी हो सकती है। पशु आहार में अधिक मात्रा में दाना या बरसीम के सम्मिलन में अफारा हो सकता है। सिर्फ बरसीम खिलाने से भी अफारा होने के आसार बढ़ जाते हैं। अत: उसमें गेहूँ या धान का भूसा (2-3 किग्रा / प्रतिदर) जरुर मिलाना चाहिए।

निदान–अफारे की अवस्था का निदान पशु के खाने-पीने का इतिहार, भोजन के प्रकार और आरंभिक अफार की स्थिति से दिखाई पड़े लक्षणों से किया जाता है। कुछ जटिल दीर्घकालिक मामलों में अफारे का सही कारण जानना काफी मुशिकल भी होता है।

उपचार–अफारे का उपचार उसकी गंभीरता पर निर्भर करता है। चरम अवस्था में जिसमे श्वास रुकने का खतरा है, रियुमन की पृष्ठीय कोष को तुरंत ट्रोकर केनुला से छेद कर देना चाहिए औए उस जगह पर दबाव देने से गैस निकल जाएगी।

(5) डायस्टोरिया

बछड़ियों में गर्भाशय ग्रीवा का अधूरा फैलाव कभी-कभी होता है, लेकिन सही घटना निर्धारित करना मुश्किल है क्योंकि ज्यादातर स्थितियों में पहले चरण के प्रसव की शुरूआत पर ध्यान नहीं दिया गया है।

यह संभव है कि डिस्टोरिसया के कुछ मामलों को अपूर्ण गर्भाशय ग्रीवा फैलाव के रूप में वर्गीकृत किया गया है, लेकिन यह केवल शुरूआती प्रथम चरण के प्रसव के दौरान अति-उत्साही हस्तक्षेप का प्रतिनिधित्व करता है। आमतौर पर उद्घाटन केवल 5-10 सेमी व्यास का होता है जो केवल एक हाथ के प्रवेश की अनुमति दे सकता है।

इलाज

10 से 15 मिनट के लिए लगाया गया मैन्युअल दबाव कुछ मामलों में गर्भाशय ग्रीवा को धीरे-धीरे चौड़ा कर सकता है, लेकिन ऐसे मामले शुरुआती प्रथम चरण के प्रसव के दौरान परेशान बछड़ियों का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। कुछ मामलों में योनी ठीक से फैलने में भी विफल हो सकती है क्योंकि पानी की थैली से कोई दबाव नहीं पड़ा है और पशुचिकित्सा का ध्यान आवश्यक है। गर्भाशय के संकुचन द्वारा गर्भाशय ग्रीवा के माध्यम से योनी में दबाए गए एक अक्षुण्ण पानी की थैली के दबाव से प्राकृतिक फैलाव प्राप्त होता है। इस कारण से पूर्ण फैलाव पूरा होने तक वॉटरबैग को मैन्युअल रूप से तोड़ना नासमझी है।

(6) कीटोसिस

कीटोसिस पशु के ब्याने के बाद कुछ दिनों से लेकर कुछ सप्ताह में होता है। इसमें रक्त में ग्लूकोज की कमी एवं कीटोन बॉडीज की अधिकता तथा मूत्र में कीटोन बॉडीज का उत्सर्जन होता है जिसके फलस्वरूप शरीर का वजन कम हो जाता है, दुग्ध उत्पादन भी कम हो जाता है। इसके कारण अक्सर दूध उत्पादक और प्रजनन में हानि भी हो जाती है। इसके अलावा किसान को वित्तीय नुकसान झेलना पड़ता है, जो कि उनके उपचार में और बढ़ जाती है। किटोसिस के मामले ज्यादातर उच्च उत्पादन वाली डेयरी गायों में होता है। कंटोसिस में शरीर में कार्बोहाइड्रेट व वोलेटाइल फैटी एसिडस के मेटाबोलिज्म में गड़बड़ी से उत्पन्न होती है। कार्बोहाइड्रेट के पाचन व वितरण में असंतुलन से ही यह रोग होता है। शरीर की स्थिति का आकलन और शरीर के ऊपर वसा परत की मोटाई की निगरानी, रुमेन की गतिविधि एवं कीटोसिस होने के कारणों का नियंत्रण कैटोसिस निगरानी के लिए सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला तरीके है।

गाय ऊर्जा चयापचय–गाय के आहार में काफी मात्रा में संरचनात्मक कार्बोहाइड्रेट (सेल्यूलोज, हेमिकेलुलोज और पेक्टिन) और आरक्षित कार्बोहाइड्रेट (स्टार्च और अन्य पानी

में घुलनशील कार्बोहाइड्रेट) होते है। इन सभी कार्बोहाइड्रेट में से लगभग 90% रेटिकुलोरुमेन मे मौजूद माइक्रोबायोटा (जीवाणु) द्वारा निष्पादित फर्मन्टेशन प्रक्रियाओं द्वारा पचाया जाता है। रुमेन में कार्बोहाइड्रेट के फर्मन्टेशन के कारण एसिटिक, प्रोपियोनिक, और ब्यूटिरिक एसिड (सबसे प्रचुर मात्रा में) के साथ-साथ मीथेन और कार्बन डाइऑक्साइड का उत्पादन होआ है। एसिटिक एसिड ऊर्जा स्रोत के रूप में तथा वसा उत्पादन में उपयोग किया जा सकता है। फिर भी, इसका मुख्य काम दूध वसा का उतपादन करना है। एसिटिक एसिड आहार के साथ दिया जाये तो ये दूध की वसा सामग्री को बढ़ाता है प्रापियोनिक एसिड ग्लूकोज का निर्माण करता है, जिसे ऊर्जा स्रोत के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। ब्यूटिरिक एसिड ज्यादातर ऊर्जा स्रोत के रूप में, या दूध वसा के निर्माण में इस्तेमाल किया जा सकता है।

कारण–यह रोग प्राय: ब्याने के बाद उन गायो में होता है जिन की उत्पादन क्षमता अधिक होती है अत: उन्हें आहार भी अधिक दिया जाता है और पशु पूरे दिन घर में बंधे रहते हैं अर्थात व्यायाम नहीं मिलता है या चरने बाहर नहीं जाते है। कीटोसिस की संभावना तीसरे व उसके बाद के ब्यांत में अधिक होती है। जब उनके दूध उत्पादन की क्षमता अपने चरम पर होती है तब शरीर में ग्लूकोज की उपलब्धता कम हो जाती है। जिसके कारण से बसा का उपयोग अधिक होने लगता है तथा कीटोन बॉडीज का निर्माण ज्यादा होने लगता है। खून के जांच में कीटोन बॉडीज बढ़ा हुआ तथा ग्लूकोजु घटा हुआ दिखता है। इस प्रकार के कीटोसिस को प्राथमिक कीटोसिस कहा जाता है।

कभी-कभी गर्भावस्था के दौरान अंतिम महीनों में भी हो सकता है क्योंकि उस समय वसा अत्यधिक तेजी से ऊर्जा प्रदान करने के लिए उपयोग होता है। इसके परिणामस्वरूप ग्लूकोज के निर्माण में बाधा उत्पन होती है तथा शरीर को इंसुलिन के लिए प्रतिरोधी बनाता है, जिससे ग्लूकोज का उपयोग बाधित होता है इस प्रकार के कोटोसिस का विकास गाय को सूखा अवधि के दौरान अधिक खिलाने से होता है। खून के जांच में कीटोन बॉडीज बढा हुआ तथा ग्लूकोज घटा हुआ दिखता है।

देशी नस्लों की गायों में कीटोसिस नहीं के बराबर होता है परंतु संकर नस्ल के पशुओं में अधिक पाया जाता है। यह रोग शरीर में कार्बोहाइड्रेट के मेटाबोलिज्म में गड़बड़ी से कार्बोहाइड्रेट की कमी से हाइपोग्लाइसीमिया होने के कारण होता है। गर्मी में पशु को अधिकतर कम मात्रा व कम गुणवत्ता वाला चारा मिलता है ऐसे में शरीर की आवश्यक क्रियाओं के संचालन हेतु वसा का प्रयोग अधिक होता है जिससे कीटोन बॉडीज बनते हैं और पशु को कीटॉसिस हो जाता है बरसात एवं सर्दी में पशु को अधिक मात्रा व अधिक गुणवत्ता वाला चारा दाना खाने को मिलता है। इससे दुग्ध उत्पादन बढ़ने से पशु पर तनाव बढ़ जाता है और कोटोसिस हो जाता है। यदि ब्याने के बाद पशु का कम मात्रा में कम गुणवत्ता वाला चारा दाना दिया जाए तो भूख के कारण कार्बोहाइड्रेट व चर्बी या वसा की मेटाबॉलिज्म में गड़बड़ से ब्यानें के बाद कीटोसिस हो जाता है। उपनैदानिक कीटोसिस में किसी बीमारी या अन्य कारणों से जानवर कम खाता है तथा प्रभावित जानवर दाने का सेवन कम कर देते हैं और हरा चारा का विकल्प चुनते हैं।

यदि ब्याने के बाद पशु मेट्राइटिस, मैस्टाइटिस, दर्द या अन्य कारणों से कम खाता है। भले ही सक्षम गुणवत्ता का अधिक चारा दाना भी रखा जाए तो भी पशु नहीं खाता है जिससे कीटोसिस हो जाता है। कभी-कभी कीटोसिस और मिल्क फीवर अर्थात दुग्ध ज्वर साथ-साथ हो जाते हैं।

लक्षण

चयापचय रूप—अधिकतर पशुओं में यही अवस्था पाई जाती है जिसमें पशु का पाचन तंत्र का कार्य अनियंत्रित, दुग्ध उत्पादन में कमी तथा अवसाद होना। पशु घास भूसा तो खाता है लेकिन दाना नही खाता है परंतु कुछ दिनों बाद तो किसी भी प्रकार का आहार एवं पानी नहीं लेता है। इसी के साथ पाइका के कारण पशु अखाद्य चीजें खाने की चाह रखता है। पशु का वजन अचानक कम हो जाता है तथा चमड़ी के नीचे की चर्बी काफी कम हो जाने से पशु काफी कमजोर दिखाई देता है। दूध में भी अचानक भारी कमी हो जाती है, पशु सुस्त एवं चल-फिर भी नही पाता है। कठोर मिंगनी के रूप में म्यूकस से लिपटा हुआ गोबर आता है। शरीर का तापमान, नाड़ी की गति तथा श्वसन सामान्य होता है। कीटोन बॉडीज की मीठी सिरके जैसी विशेष गंध श्वास, दूध एवं मूत्र से आती है। आखें सिकुड़ जाती हैं और फिर सिर थोड़ा नीचे रखकर एक ही तरफ रहता है। योनि मार्ग से श्राव निकलता है।

तंत्रिका रूप—पशु पैरों को क्रास करते हुए गोलाकार घूमता है जो इसका विशिष्ट लक्षण है। पशु सिर दीवार पर दबाता है अथवा नीचे लटका लेता है। पशु बिना उद्देश्य इधर-उधर चलता है ऐसा लगता है जैसे वह अंधा हो गया हो। पशु बार-बार त्वचा व अन्य अखाद्य वस्तुओं को चाटता है। अधिक लार के साथ पशु मुंह से चबाने जैसी आवाज करता है। पशु में टिटनेस के दौरे के लक्षण नजर आते हैं जिससे पशु को शारीरिक चोट भी लग सकती है। स्नायुविक लक्षण लगभग 1 घंटे तक रहते हैं तथा आठ-दस घंटे बाद फिर से प्रकट होते हैं।

निदान—खून, दूध तथा मूत्र में कीटोन बॉडीज की जांच की जाती है। दूध तथा मूत्र में परीक्षण भी किया जाता है जोकि काफी सटीक होते हैं और यह बहुत ही आसान होता है। इसे किसान खुद इस्तेमाल कर सकते है। इस परीक्षण में डिपस्टिक को दूध तथा मूत्र में डुबाते हैं तथा डिपस्टिक का रंग बदलने का इंतेजार करते हैं। आमतौर पर यह प्रतिक्रिया 1-2 मिनट में हो जाती है। डिपस्टिक के रंग को उसके डिब्बे पर अंकित रंग से मिलाते है।

उपचार—उपचार का मुख्य उद्देश्य रक्त में शर्करा का स्तर बराबर करना ताकि कीटोन बॉडीज का सामान्य उपयोग हो सके और वह दूध या मूत्र में नहीं निकलें।

- डेक्सट्रोज 25 इंजेक्शन की 600 से 1000 एम एल इंट्रावेनस विधि से दे। इसके पश्चात रक्त में ग्लूकोज का स्तर सामान्य बना रहे इसके लिए पशु को कुछ दिनों तक गुड़ खिलाते रहे।
- इंजेक्शन वेटामेथासोन या डेक्सामेंथासोन काफी लाभदायक होते हैं। 80 एमजी इंट्रावेनस या इंटरमस्कुलर विधि से दें यदि 1 दिन से आराम नहीं होता है तो दूसरे दिन भी लगाएं।

- सोडियम प्रॉपियोनेट 100 से 200 ग्राम प्रतिदिन कम से कम 3 दिन तक खिलाएं।
- कोएंजाइम ए इ सिस्टीयामीन, 750 एमजी इंट्रावेनस 3 दिन के अंतराल के बाद कुल 3 इंजेक्शन लगाए।
- इंजेक्शन लिवर एक्सट्रैक्ट 10 एम एल इंटरमस्कुलर विधि से एक दिन छोड़कर कुल 3 बार लगाए।

रोकथाम

- गर्भावस्था के दौरान अधिक वसा वाला आहार खिलाकर उसको मोटा नहीं बनने देना चाहिए।
- गर्भित गाय भैंस को भूखा नही रखना चाहिए। उन्हें संतुलित आहार देना चाहिए।
- गर्भित गाय भैंस के आहार में खनिज लवण अवश्य देवें।
- गर्भावस्था के दौरान मक्का एवं गुड़ जैसे आहार भी देना चाहिए क्योंकि यह आसानी से पचते हैं और रक्त में ग्लूकोज के स्तर को सामान्य बनाए रखते है।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

प्रश्न 18. शुगरग्रेज चारे के बारे में लिखिए।
Write about Sugargraze Roughages.

उत्तर- शुगरग्रेज एक उत्तम गुणवत्ता वाली चरी है, जो कि ज्वार, मीठी चरी अरु सूडान घास की एक संकर किस्म है। इसका उपयोग विशेषता हरे चार, साइलेज व भूसे मे किया जाता है। आधुनिक परिवेश में यह चारे का उत्तम विकल्प है। इसकी तेजी से उगने की क्षमता, मीठे रसीले तने एवं चौड़े गहरे हरे पत्तों के कारण ही इसे उत्कृष्ट चारे की श्रेणी में रखा गया है। शुगरग्रेज की खेती व्यापक रूप से विभिन्न परिस्थितियों मे की जा सकती है। निहित सधन जड़ प्रणाली होने के कारण शुगरग्रेज को कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी आसानी से उगाया जा सकता है हालांकि अनुकूल नमी मिलने पर इसकी पैदावार कई गुना बढ़ जाती है। प्रचुर मात्रा मे शुष्क तत्व एवं शर्करा होने के कारण दुधारू पशु इसे बड़े चाव से खाते हैं।

मुख्य विशेषताएं

- शुष्क तत्वों की मात्रा (22-26%)
- शर्करा की अधिक मात्रा (10-11%)
- अधिक प्रोटीन की मात्रा (12-18%)
- कैल्शियम की मात्रा जो कि दुधारू पशुओं के लिए बहुत ही उपयुक्त है।
- पाचनशीलता (56-64%)

शुगरग्रेज का उपयोग

ऐसे क्षेत्र जहाँ मक्का और ज्वार आदि फसलों की अधिक उपज नहीं होती, वहां पर शुगर ग्रेज को साल्लेज बनाने के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। हरे चारे के रूप में इसका उपयोग बड़ा लाभदायक है और पशु इसे बड़े चाव से खाते हैं। इसे भूसे की तरह भी उपयोग में लाया जा सकता है।

प्रश्न 19. शुगरग्रेज प्रबन्धन पर टिप्पणी लिखिए।
Write note on Sugargraze Management.

उत्तर- **शुगरग्रेज प्रबन्धन**

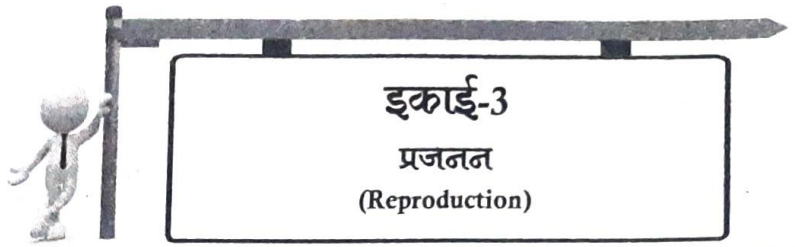
मृदा	मृदा पी एच पर 5.5-7.0
सिंचाई	गर्मियों में 8 दिन के अंतराल पर सर्दियों में 12 दिन के अंतराल पर
बुवाई का समय	वंसत ऋतु-फरवरी से अप्रैल खरीफ-मई से अगस्त रबी-सितम्बर से नवम्बर
बीज दर	काली मिट्टी-5 किग्रा प्रति एकड़ हल्की मिट्टी-6 किग्रा, प्रति एकड़
उर्वरक	यूरिया-60 किग्रा./एकड़ पोटाश-20 किग्रा / एकड़
कीट एवं रोग प्रबन्धन	तना एवं शाखा भेदक कीट की गंभीर समस्या होती है इसके उपचार हेतु बीज उपचार करें तथा पहली सिंचाई के साथ 8 किलो फोरेट 10 जी अथवा कार्टप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी / एकड़ की दर से उपयोग करें।
फसल की कटाई	बुवाई के 45-50 दिन शुगरग्रेज की दो कटाई ली जा सकती है। साइलेज के लिए 75-90 दिन के बाद कटाई ली जानी चाहिए।
उपज	250-300 क्विंटल प्रति एकड़

प्रश्न 20. पशु आहार में मैग्नीशियम के कार्य लिखिए।
Write the function of Magnesium in animal food.

उत्तर- **मैग्नीशियम के कार्य**
(Functions of Mangesium)

(1) दूध में मैग्नीशियम की कमी को पूरा करना।
(2) पशु को लकवा (Paralysis) से बचाना।
(3) कैल्सियम तथा फॉस्फोरस के उपयोग में मदद करना।
(4) रक्त का आवश्यक भाग बनाना।

■■■



इकाई-3
प्रजनन
(Reproduction)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

प्रश्न 21. गाय और भैंस के विभिन्न भागों का वर्णन कीजिए।
Describe the different parts of Cow and Buffalo.

उत्तर- **गाय तथा भैंस के विभिन्न भागों का वर्णन**

गाय के शरीर को पाँच मुख्य भागों में बाँटा गया है-
(1) हैड (Head)
(2) गर्दन (Neck)
(3) धड़ (Trunk)- (अ) वक्ष, (ब) उदर।
(4) पूँछ (Tail)
(5) पुट्ठे (Muscles)- (अ) अगले पैर (Fore legs), (ब) पिछले पैर (Hind legs)।

1. सिर के भाग (Parts of Head)

(1) **चाँद** (Poll)—यह दोनों सींगों के मध्य का भाग है।
(2) **सींग** (Horns)—सिर से निकलते हैं। उम्र के अनुसार छल्ले बनते हैं।
(3) **कान** (Ears)—सींगों के नीचे दोनों ओर कान होते हैं।
(4) **ललाट या माथा** (Fore Head)—चाँद के नीचे आँखों की सतह का भाग।
(5) **आँखें** (Eyes)—आँख के भीतरी कोण को भीतरी कोआ (Inner canthus) तथा बाहरी कोण को बाह्य कोआ (Outer canthus) तथा प्रत्येक एक पलक (Eyelid) से घिरी रहती है इसके अलावा आँखों के ऊपर बालों की पंक्ति को भौंहें (Eyebrows) कहते हैं। पलकों के बाल (Eye-lashes) कहलाते हैं।
(6) **चेहरा** (Face)—आँख के नीचे की ओर नथनों के मध्य का भाग चेहरा कहलाता है।
(7) **थूथन** (Muzzle)—ऊपरी ओंठ का भाग।
(8) **मफिल** (Muffle)—ऊपरी ओंठ।
(9) **कपोल या गाल** (Cheeks)।
(10) **जबड़े** (Jaws)—ऊपर नीचे के दाँतों वाले भाग।
(11) **ठुड्डी** (Chin)।
(12) **नासाद्वार** (Nostrils)—नाक के दोनों रन्ध्र।

(13) मुख (Mouth)—मुख के अन्दर (i) दाँत (teeth), (ii) तालु, (iii) जीभ (tongue) आदि भाग होते हैं।

2. गर्दन के भाग (Parts of Neck)

(1) ग्रीवा-शीर्ष (Crest of the Neck)।

(2) ग्रीवा-स्तल (Nap of the Neck)—गर्दन का धड़ से जुड़ा हुआ भाग ग्रीवा स्तल कहलाता है।

(3) गला (Throat)।

(4) गलकम्बल (Dewlap)—ग्रीवा के निचले भाग में गले से लेकर अधर वक्ष तक लटकी हुई मसीली झालर को गलकम्बल कहते हैं। यह भैंस में नहीं होता है।

3. धड़ के भाग (Parts of Trunk)

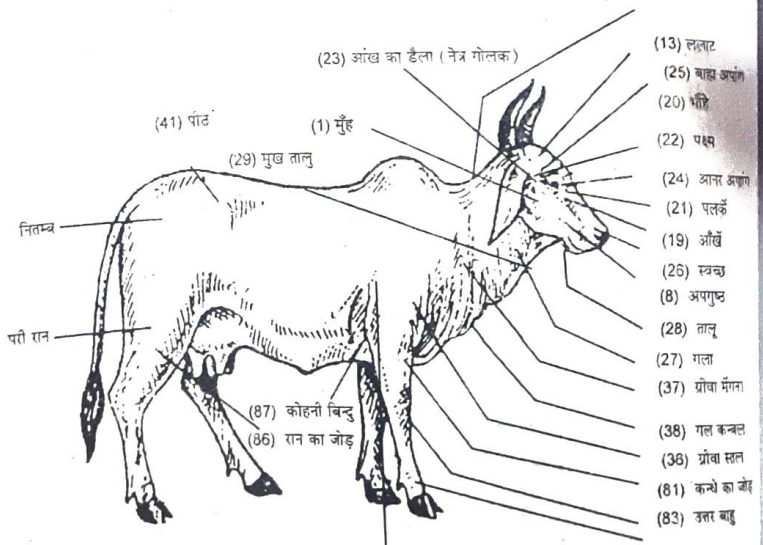
(1) ककुद या कूबड़ या ठाट (Humb)—ग्रीवा किरीट (crest) या शिखर तथा स्कन्ध प्रदेश (withers) के मध्य में उठा हुआ भाग होता है जिसका भैंस व घोड़ों में अभाव होता है।

(2) स्कन्ध प्रदेश (Withers)—गर्दन के धड़ से मिलने के स्थान पर कूबड़ के निचली ओर यह धड़ का सबसे ऊँचा भाग है।

(3) पीठ (Back)—विदर से अन्तिम पसली तक का भाग।

(4) कमर (Loin)—पीठ से लेकर नितम्ब बिन्दु की सतह का भाग।

(5) क्राउप (Croup)—कमर तथा पुच्छ मूल (dock) के मध्य में स्थित जिस कशेरुक (sacral vertebrae) वाला भाग।



चित्र—गाय के बाहरी अंग

(6) नितम्ब (Buttocks)—गुदा (anus) के दोनों ओर स्थित माँसल भाग।

(7) वक्ष (Breast)—गर्दन का निचला भाग जो अगली टाँगों के सामने स्थित रहता है।

(8) पार्श्व पट्टा (Flap of the flank)।

(9) तल (Belley)।

(10) ढोल (Barrel)—पेट तथा पार्श्व वाले भाग ढोल कहलाते हैं।

(11) पसलियाँ (Ribs)।

(12) घेरा या गर्त (Girth)—सीने के चारों ओर की परिधि घेरा कहलाती है। सीने के स्कन्ध प्रदेश तक नापा जाता है।

(13) सीना (Chest)—स्कन्ध के पीछे पसलियों वाला भाग।

(14) नितम्ब अस्थि (Hip bone)।

(15) अपलास्थि (Pin bone)।

(16) नाभिट्टा (Navel Flap)—टुण्डी भी कहते हैं।

(17) गुदा (Anus)—उपरोक्त के अलावा मादाओं (females) तथा नरों (males) के अंग इसी भाग में स्थित होते हैं।

4. पूँछ के भाग (Parts of Tail)

(1) पुच्छ मूल (Root of the Tail या Dock)।

(2) पुच्छ आधार (Base of the Tail)—जहाँ पुच्छ जुड़ी रहती है।

(3) पुच्छ धड़ (Body of the Tail)—पूँछ का बीच का भाग।

(4) पुच्छ सिरा (Tip of the Tail)—पूँछ का आखिरी सिरा।

(5) पूँछ का गुच्छा या झब्बा (Switch of the Tail)।

5. पुट्ठे (Muscle)

(अ) अगले पैर (Fore Legs)—

(1) स्कन्ध (Shoulder)—स्केपुला हड्डी के ऊपर का माँसल भाग।

(2) स्कन्ध बिन्दु (Shoulder point)—ह्यूमरस हड्डी की ऊपरी नोंक से बना, उठा हुआ भाग।

(3) भुजा (Arm)—यह ह्यूमरस अस्थि के ऊपर का माँसल भाग।

(4) अग्रबाहु (Fore arm)—कोहनी (elbow) तथा घुटने (knee) के मध्य का रेडियस अलना (radius ulna) के ऊपर का भाग।

(5) कोहनी (Elbow)—यह (humerus) और अलना के मध्य में होती है।

(6) घुटना (Knee joint)—यह रेडियस, कार्पस तथा मेटाकार्पस अस्थियों द्वारा बना एक संयुक्त जोड़ है।

(7) **अगली पिंडली** (Shin or Fore-canon)।

(8) **टखना** (Fetlock joint)।

(9) **विजन खुरी** (Dew claws)—टखना के पीछे गौ- पशुओं में प्रत्येक पैर में पाये जाने वाली दो छोटी-छोटी सींगवत् रचनाएँ।

(10) **गुम्ची** (Pasterns)—टखने के नीचे तथा सुमशीर्ष के ऊपर प्रथम एवं द्वितीय फ्लेक्स वाला भाग।

(11) **सुमशीर्ष** (Coronet)—यह सुम के चारों ओर वाला द्वितीय फ्लेक्स कुछ निचला भाग है।

(12) **सुम** (Hoof)—सींग की तरह का काला भाग जिसे खुर कहते हैं।

(13) **सुम के विदर** (Cleft of the hoof)—गाय जाति के पशुओं में उनका सुम दो भागों में बँटा होता है। दो भागों के मध्य का भाग विदर कहलाता है।

(ब) पिछले पैर (Hind legs)—

(1) **नितम्ब** (Hip)।

(2) **नितम्ब सन्धि** (Hip joint)।

(3) **ऊपरी जंघा** (Upper thigh)—इसे गैस्किन (gaskin) भी कहते हैं।

(4) **निचली जंघा** (Lower thigh)।

(5) **पिछला घुटना** (Hock joint)—तीन हड्डियों (i) टिबिया (tibia), (ii) टार्सस (tarsus) और (iii) मेटाटार्सस (matatarsus) का बना हुआ संयुक्त जोड़।

(6) **पिछली पिंडली** (Hind canon of shank)—यह पिछले घुटने (hock) द्वारा टखने (fet lock) के मध्य मेटाटार्सस वाला भाग।

उपरोक्त के अलावा पिछले पैरों में भी विजन खुरी, गुम्ची, सुमशीर्ष और सुम तथा विदर आदि भाग अगले पैरों के भाग के समान होते हैं।

गाय तथा भैंस में अन्तर
(Difference between Cow and Buffalow)

गाय तथा भैंस के बाहरी अंगों को देखने पर निम्नलिखित भिन्नताएँ मिलती है-

	गाय		भैंस
1.	गाय के कूबड़ (Hump) पाया जाता है।	1.	भैंस के कूबड़ नहीं होता है।
2.	गाय के गलकम्बल झालर (Dewlap) पाई जाती है।	2.	भैंस में इसका अभाव होता है।
3.	गाय का अधर वक्ष (Brisket) कम विकसित होता है।	3.	भैंस का अधर वक्ष अधिक विकसित होता है।

प्रश्न 22. गाय तथा भैंस के पाचन संस्थान का वर्णन कीजिए।
Describe the digestive system of cow and buffalo.

उत्तर-

गया तथा भैंस के पाचन संस्थान

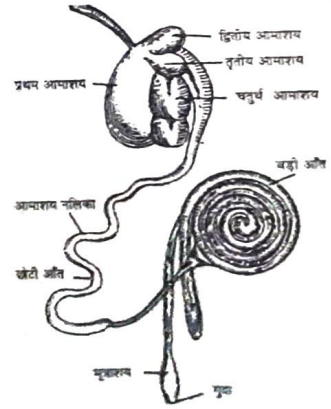
वे सभी अंग जिनका सम्बन्ध आहार को प्राप्त करने, पाचन तथा पोषण में होता है, मिलकर पाचन तन्त्र कहलाते है।

(1) मुँह (Mouth)—मुंह से भोजन करते हैं तथा मुँह में होठ, जीभ, दाँत इत्यादि भाग होते हैं जो भोजन को चबाने में सहायक होते हैं। मुँह में एक खास प्रकार के अंग होते हैं जिन्हें पैपिली कहते हैं। यह अन्दर की ओर झुके होते है जिससे भोजन बाहर न निकले। तीन जोड़ी लार ग्रन्थियाँ होती हैं जो लार निकालती हैं। भोजन में लार मिलकर पाचन में सहायता करती है। एक प्रौढ़ गाय नित्य लगभग 55-60 किग्रा. लार बनाती है।

(2) ग्रास नली (Oesophagus)—यह एक नली के आकार का अंग होता है। यह नली आमाशय के प्रथम कोष्ठ में जाती है तथा आमाशय में खुलते समय इसका मुँह चौड़ा होता है।

(3) आमाशय (Stomach)—आमाशय में चार कोष्ठ होते हैं। यह चारों मिलकर आमाशय कहलाते हैं। प्रथम कोष्ठ अधिक महत्व का होता है।

प्रथम आमाशय-रियूमेन (Rumen)—यह जुगाली का प्रथम आमाशय है। इसमें 30 से 50 गैलन भोज्य पदार्थ आ सकता है। इसकी दीवालों पर पुष्ट माँस पिण्ड लगे रहते हैं जिनसे खाद्य पदार्थ बाहर-भीतर आ सकता है। ग्रास नली के अन्तिम भाग में जुड़कर द्वितीय आमाशय में खुलता है। भोजन जुगाली के लिए इसी भाग में रहता है। पशु जब जुगाली करना चाहता है तो बाहर निकालकर मुँह में करता है। जुगाली किया पदार्थ आमाशय में आता है। भोजन के आधा घण्टे बाद जुगाली प्रारम्भ हो जाती है। जुगाली के समय केवल लार निकलती है रस नहीं। कुछ जीवाणु होते हैं जो अपना कार्य करते हैं। रियूमेन में पाये जाने वाले जीवाणुओं में बैक्टीरिया, यीस्ट तथा प्रोटोजोआ (पैरामीशियम) होते हैं।



चित्र-पाचन तन्त्र

यह जीवाणु सेल्यूलोज पर क्रिया करता है और विभिन्न कार्बनिक अम्ल बनाता है जिसमें एसिटिक एवं ब्यूटाइरिक अम्ल मुख्य हैं। यह अम्ल लार से मिलकर लवण बनाते हैं जो आँतों में शोषित करके शक्ति देते हैं।

सेल्यूलोज के अलावा स्टार्च तथा शर्करा का भी किण्डवीकरण होता है। भोजन के रेशेयुक्त एवं दुष्पचनीय तन्तुओं को ये जीवाणु तोड़कर पाचन के लिए सरल बनाते हैं। इसी प्रकार अघुलनशील भोज्य पदार्थ भी घुलनशील रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। पशु जो घटिया किस्म की प्रोटीन चरागाहों आदि से प्राप्त करता है उसे ये जीवाणु उच्चकोटि की प्रोटीन में बदल देते हैं तथा इसी भाग में भोजन से विटामिन B तथा विटामिन K का निर्माण होता है।

इस प्रकार जुगाली करने वाले पशुओं के लिए रियूमेन आमाशय का एक महत्वपूर्ण अंग है।

दूसरा आमाशय-रेटीकुलम (Reticulum)—इसकी बनावट मधुमक्खी के छत्ते के समान होती है। इस पर म्यूकस झिल्ली चढ़ी रहती है जो छोटी-छोटी कोशिकाओं में खुलती है। कोशिकायें त्रिकोणीय, चतुर्भुजाकार, षटाकार होती हैं। जल भी इसी भाग में एकत्रित रहता है तथा आवश्यकतानुसार इसी भाग से जल अन्य भागों में भेजा जाता है। रियूमेन से आये भोजन को तीसरे भाग में भेजता है।

तीसरा आमाशय-ओमेसम (Omasum)—इसमें पत्ती जैसे उठे हुए भाग होते है तथा किनारे खुरदरे होते हैं, जो माँसपेशियों के सिकुड़ने पर रेती के तरह कार्य करते है तथा भोजन को चूर्ण रूप में बदलकर चौथे भाग में भेजते हैं।

चौथा आमाशय-एवोमैसम (Abomasum)—इसे वास्तविक आमाशय भी कहते है। चूर्ण भोजन इसी भाग में आता है। तीसरे में कुछ क्षारीय रहता है, परन्तु चौथे में शर्करायुक्त भोजन को लैक्टिक अम्ल में बदल देता है। माड़ी स्टार्च में बदल जाती है। भोजन का मन्थन इसी भाग में होता है। इस भाग में आमाशय रस (जठर रस) मिलता है। इसमें HCL की उपस्थिति होती है तथा छोटे-छोटे टुकड़ों में भोजन इसी भाग में टूटता है।

आमाशय दो प्रकार की क्रियायें करता है- (1) माड़ी के टूटने का कार्य, (2) प्रोटीन टूटने की क्रिया। प्रोटीन, पेपसिन एन्जाइम के कारण टूटती है। आमाशय रस की उपस्थिति में तथा आमाशय के सिकुड़ने व फैलने से खाद्य पदार्थ आसानी से आमाशय में मिल जाता है और पूर्ण रूप से मिलने के बाद ही आँतों में जाता है। रैनिन एन्जाइम दूध की प्रोटीन को तोड़ता है।

(4) आँतें (Intestines)—यह आमाशय के बाद वाला भाग होता है। आँतों में पचा भोजन सोखा जाता है। आँतें दो भागों में बँटी रहती हैं- (1) छोटी आँत, (2) बड़ी आँत। दोनों के बीच में एक और भाग होता है जिसे सीकम (caeicum) कहते हैं। यह आंतें गायों में 39 मीटर (130 फीट) लम्बी तथा सीकम 7 मीटर (22 फीट) लम्बी होती है। बड़ी आँत 21 मीटर (65 फीट) लम्बी होती है। घड़ी स्प्रिंग के समान यह आँतें घूमती रहती हैं। यह

दाहिने तरफ होती है। अन्तिम भाग कमर में सीधा मलाशय बनाता है। आँतों की दीवाल तीन पर्तों की बनी होती है। बाहरी पर्त पेरीटोनियल कोट, मध्य की मसक्यूलर कोट तथा तीसरी को म्यूकस मेम्ब्रेन कहते हैं। इन्हें क्रमशः ड्यूडीनम, जेजुनम तथा इलियम कहते हैं।

आँतों से रस निकलता है जिसमें अनेक एन्जाइम होते हैं। यहाँ पर बची शर्करा, पेप्टोन इन एन्जाइमों द्वारा तोड़ दिये जाते हैं। दूसरी शर्करा ग्लूकोज में परिणित कर दी जाती है तथा इसका रक्त में शोषण हो जाता है।

बिना पचा हुआ भोजन व अवशोषित खाद्य पदार्थ बड़ी आँत में पहुँचता है। यहाँ पाचन की क्रिया बहुत कम होती है। पचे हुए पौष्टिक तत्वों की शेष बची सामग्री यहाँ शोषित हो जाती है। यहाँ पर भोजन काफी समय तक रहता है तथा साकाणुओं द्वारा पूर्ण रूप से सोखकर मल को गाढ़ापन प्रदान करता है।

पाचन क्रिया में पित्तरस पेंक्रियाटिक रस सहायता करते हैं। पेप्सिन अधिक अम्लीयता उत्पन्न नहीं होने देती है।

(5) अन्य भाग—(i) अग्नाशय—इसमें अग्नाशय रस निकलता है। यह किडनी के सामने होता है। इसका रंग लाल होता है। अग्नाशय में एक नाली होती है जो यकृत से आती है। अग्नाशय से एक प्रकार का रक्त नाली में गिरता है जो मूत्र में शर्करा का संचालन करता है तथा रक्त में ग्लूकोज की मात्रा नहीं बढ़ने देता है। इसको इन्सुलिन हारमोन कहते हैं। यदि क्लोम रोग ग्रसित रहा हो तो मधुमेह की बीमारी हो जाती है। अग्नाशय रस में एन्जाइम मिले रहते हैं जिनमें एक पेप्सिन, दूसरा माड़ी को ग्लूकोज में बदलता है तथा तीसरा वसा सोखने योग्य बनाता है।

(ii) यकृत—इसके नीचे एक पित्त का थैला होता है जिसमें पित्त जमा होता है। इसे पित्ताशय कहते हैं। इसका रंग लाली में पीलापन लिए होता है। इसमें पित्त तैयार होता है। यह शोषण योग्य ग्लूकोज को ग्लाइकोजिन में बदलता है। ठोस अवस्था में यकृत में एकत्रित रहता है। यकृत द्वारा दूषित पदार्थ जैसे- यूरिया, यूरिक अम्ल का एकत्रित करना भी एक कार्य है जो रक्त वाहिनियों द्वारा गुर्दे या वृक्क में विकसित करने के लिए भेजे जाते हैं

(iii) तिल्ली—यह शरीर में आमाशय के पास होती है। यह श्वेत रक्ताणुओं के निर्माण में कार्य करती है। पुराने लाल रक्ताणुओं को नष्ट करती है। तिल्ली कुछ-कुछ मिनट में सिकुड़ती तथा फैलती है। इसका स्थान बायी ओर होता है।

प्रश्न 23. गाय और भैंस के श्वसन संस्थान का वर्णन कीजिए।

Describe the respiratory system of cow and buffalo

उत्तर-

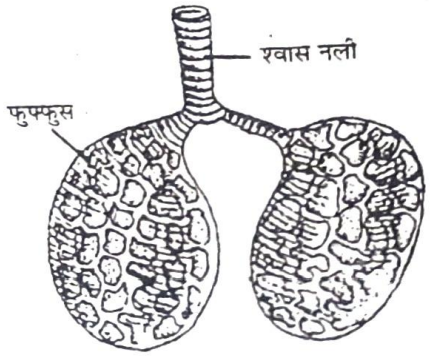
गाय एवं भैंस का श्वसन संस्थान
(Respiratory System of Cow and Buffalo)

श्वसनांग वे हैं जिनके धरातल से एक ओर ऑक्सीजन तथा दूसरी ओर रुधिर स्वतन्त्रता से एक-दूसरे के सम्पर्क में आ सके। रुधिर की हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन ले जाये और बदले में कार्बन डाई ऑक्साइड बाहर निकल जाय।

श्वसन जीवित कोशिकाओं में होने वाली उन सारी एन्जाइम अभिक्रियाओं को कहते हैं जिनमें ऑक्सीजन (O_2) द्वारा कार्बनिक पदार्थ का ऑक्सीकरण होकर ऊर्जा की उत्पत्ति होती है और कार्बन डाई ऑक्साइड (CO_2) बाहर निकालती है। ऑक्सीजन (O_2) जीवन के लिए आवश्यक है।

इस तन्त्र (system) में कई अंग होते हैं, जैसे- नासारन्ध्र (nostrils), फुफ्फस नाल (bronchi), ग्रसनी (pharynx), घाषित्र (larynx), श्वांसनाल (trachea) और फेफड़े (lungs)।

इस तन्त्र (system) का मुख्य अंग फेफड़ा (lung) होता है। जहाँ पर रुधिर (blood) की गैसों का लेन देन (exchange) होता है।



श्वसन–(Respiration)

बाह्य (external)	भीतरी (Internal)
फेफड़े (lung) में-रुधिर-(CO_2)	जीवित ऊतक (living tissues) में-रुधिर-(CO_2)

कार्य (Functions)

(1) इस तन्त्र (system) के द्वारा शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों को भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए ऑक्सीजन (CO_2) भेजी जाती है और शरीर में से कार्बन डाई ऑक्साइड को बाहर निकाला जाता है।

(2) शरीर के तापक्रम को बनाये रखने में यह सहायक होता है।

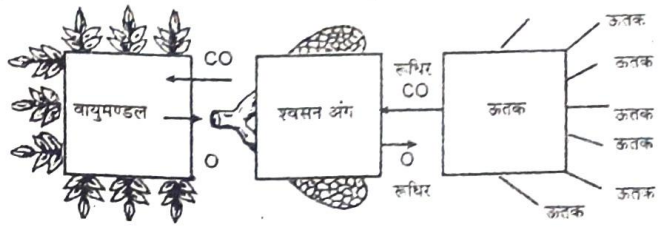
1. बाह्य श्वसन–मुख द्वारा उपस्थित म्यूकस में ऑक्सीजन घुलकर विसरण द्वारा अन्दर जाती है तथा बदले में कार्बन डाई ऑक्साइड विसरण द्वारा बाहर निकलती है। बाह्य श्वसन पाँच भागों में पूर्ण होती है।

(1) रुधिर और ऊतकों के बीच विसरण

(2) रुधिर द्वारा O_2 गैस का ऊतकों तक परिवहन।

(3) रुधिर द्वारा CO_2 गैस का परिवहन।

(4) वायुमण्डल से श्वसनागों तक साँस लेना अथवा श्वासोच्छवास क्रिया करना।



चित्र : श्वसन तन्त्र

O_2 = ऑक्सीजन, CO_2 = कार्बन डाई ऑक्साइड, ऊ = ऊतकें (Tissues)

(5) श्वसनांगों में वायु एवं रुधिर के बीच गैसीय विनिमय होना।

2. आन्तरिक श्वसन–बाह्य श्वसन के द्वारा ऑक्सीजन ऊतकों में पहुँचकर वहाँ संश्लेषित भोजन का ऑक्सीकरण करती है जिसके फलस्वरूप रासायनिक बन्धनों के टूटने से ऊर्जा निकलती है तथा जल एवं CO_2 (कार्बन डाई- ऑक्साइड) बनती है।

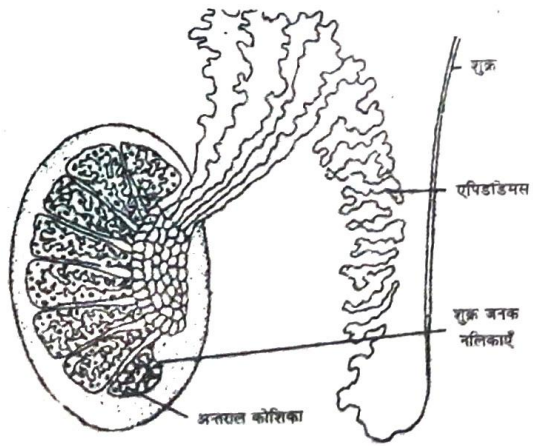
प्रश्न 24. गाय और भैंस के जनन संस्थान का वर्णन कीजिए।

Describe the reproduction system of cow and buffalo.

उत्तर-

गाय एवं भैंस का जनन संस्थान
(Reproductive System of Cow & Buffalo)

नर तथा मादा में जनन अंग भिन्न-भिन्न होते हैं। इन जननांगों द्वारा गैमीट (प्रजनन कोष) उत्पन्न होते हैं जो नर व मादा में एक-दूसरे से भिन्न होते है। इसलिए नर तथा मादा के जनन तन्त्रों का वर्णन अलग-अलग करेंगे।



चित्र–अण्डकोष की आड़ी काट (C. of Testes)

(A) नर जनन तन्त्र (Male Reproductive System)

इस तन्त्र में शुक्राणु उत्पन्न होते है जिन्हे मादा के जनन के रास्ते (reproductive tract) में एकत्र कर दिया जाता है। यह दो भागों में बाँटा जा सकता है।

(i) मुख्य लैंगिक अंग—(जैसे-वृषण) नर का यह मुख्य अंग होता है तथा संख्या में यह दो होते है। यह वृषण कोष में रहते हैं, जो कि एक थैले के आकार का बना होता है। मुख्य रूप ये यह ताप नियन्त्रित रखता है। इसका ताप शरीर से 5° से 7°C कम रहता है। शुक्रजनन अधिक क्रियाशील होते हैं। वृषण दो कार्य करते हैं- एक तो जीवाणु शुक्राणु उत्पन्न होते हैं तथा दूसरे एन्ड्रोजिन हार्मोन उत्पन्न होता है जो कि लैंगिक लक्षणों का उत्तरदायी होता है। वृषण, वृषणकोष के अन्दर रहता है फिर भी वृषण-रज्जु (spermatic cord) के द्वारा रक्त और नर्व का सम्बन्ध इससे बना रहता है। वृषण के दो मुख्य कार्य होते है-

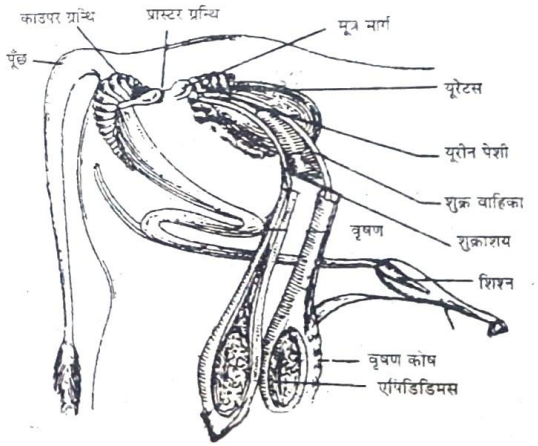
(अ) जीवित शुक्राणु उत्पन्न होते हैं जोकि अण्डाणु (ovum) का निषेचन करते है।

(ब) एन्ड्रोजिन हार्मोन को उत्पन्न करते हैं जो कि लैंगिक लक्षण व लैंगिक व्यवहार के लिए उत्तरदायी होते है।

(ii) सहायक लैंगिक अंग—इसमें निम्न भाग होते हैं-

(1) एपिडिडिमिस, (2) शुक्रवाहक,
(3) शुक्राशय, (4) प्रोस्टेट ग्रन्थि,
(5) काउपर ग्रन्थि, (6) मूत्र मार्ग,
(7) शिश्न।

(1) एपिडिडिमिस (Epididymis)—वृषण में नीचे से चलकर ऊपर की ओर गेंट वृषण में मिल जाती है। यहाँ से शुक्राणु एपिडिडिमिस में आकर एकत्रित हो जाते है। यह लम्बी घुमावदार 100 फीट तक लम्बी होती हैं। वे परिपक्व हो जाते हैं। एपिडिडिमिस शुक्राणु को एकत्रित करने का कार्य करती है।



चित्र—साँड़ (नर) के जनन अंग

(2) शुक्रवाहक (Vas deferens)—यह लम्बी नाल होती है, जो कि मूत्र मार्ग से जुड़ी रहती है मूत्र मार्ग के पास का भाग कुछ मोटा हो जाता है, जिसे ऐम्पुला कहते हैं। एपिडिडिमिस शुक्राणु शुक्रवाहक के द्वारा मूत्र मार्ग में पहुँच जाता है। यह दो होती हैं और दोनों मूत्राशय के निकट मिल जाती हैं।

(3) शुक्राशय (Seminal vesicles)—यह बहुत-सी नालिकाओं द्वारा मूत्र मार्ग से जुड़ी रहती हैं। इनका आकार भिन्न-भिन्न पाया जाता है। नर में इसकी लम्बाई 4 इन्च से 5 इन्च तक होती है। इसकी दीवारें (पेशी तन्तु) मुलायम होती है। साँड़ में जल अधिकतर शुक्राशय से प्राप्त होता है। यह क्षारीय अथवा कुछ अम्लीय होता है जिसमें पीले या भूरे पिगमेन्ट मिले रहते हैं।

(4) प्रोस्टेट ग्रन्थियाँ (Prostate glands)—प्रोस्टेट ग्रन्थि बहुत-सी खण्डिका (lobuls) से मिलकर बनती है। यह ब्लेडर के ऊपर जुड़कर मूत्र मार्ग के चारो ओर फैली रहती हैं। इनके द्वारा दूधिया तरल पदार्थ निकलता है।

(5) काउपर ग्रन्थियाँ (Cowper glands)—यह दो होती हैं। एक छोटी व एक बड़ी अण्डाकार होती हैं। मूत्र मार्ग के दोनों ओर जुड़ी रहती हैं। इसके तरल द्वारा मूत्र मार्ग के अन्दर का भाग साफ किया जाता है।

(6) मूत्र मार्ग (Urethra)—यह एक लम्बी नलिका होती है जो म्यूकस मेम्ब्रेन की बनी होती है। यह ब्लेडर व शिश्न के मध्य का भाग होता है। शुक्राशय व शुक्रवाहक दोनों मूत्र मार्गों में आकर खुलती हैं तथा इसमें मूत्र व वीर्य दोनों ही आते हैं।

(7) शिश्न (Penis)—यह नर के जनन तन्त्र का सबसे बाहरी अंग होता है। शिश्न के आगे वाले भाग को मुण्ड कहते है जिसकी लम्बाई 3 इन्च होती है। मुण्ड के ऊपर एक झिल्ली होती है जिसे शिश्न मुण्ड छेद (Prepuce) कहते हैं।

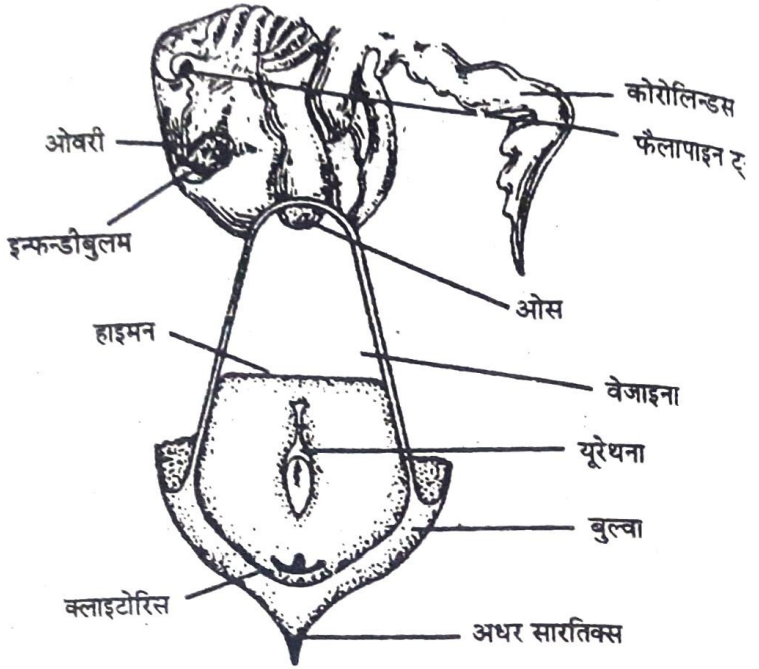
(B) मादा जनन तन्त्र (Female Reproductive System)

गाय के जनन तन्त्र में अण्डाणु (ovum) और बच्चे का पालन-पोषण व बढ़ने के लिए भी स्थान होता है। इसलिए कुछ जटिल होता है। इसको भी दो प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है-

(अ) मुख्य लैंगिक भाग (Essential Sex Organs)—इसका प्रमुख अंग अण्डाशय (ovary) होता है-

अण्डाशय (Ovary)—गाय के अण्डाशय की लम्बाई एक इन्च से डेढ़ $\left(1\frac{1}{2}\right)$ इन्च होती है तथा जनन एपीथीलियम की परत से घिरी रहती है। जनन एपीथीलिस की दीवारों से फुटक (follicles) बनाती है तथा कई अवस्थाओं के बाद पकती है तथा अण्डजनन (oogenesis) की क्रिया के द्वारा अण्डा (ovum) की उपस्थिति होती है। यह अण्ड, अण्डाशय से बाहर निकलता है और इस क्रिया को अण्डोत्सर्ग (ovulation) कहते हैं। इसके बाद

एक छोटा-सा आकार अण्डाशय के ऊपर बन जाता है जिसको कोर्पसल्यूटिम (corpus luteum) कहते है। अण्डाशय के दो प्रमुख कार्य होते हैं-



चित्र–गाय के जनन अंग

(1) अण्डाणुओं का उत्पादन होता है

(2) हार्मोन का उत्पादन होता है

अण्डाशय दो भागों का होता है-बाहरी भाग को कोर्टेक्स (cortex) और केन्द्रीय भाग को मध्यांश (medulla) कहते हैं। अण्डाशय एपीथीलियमी कोशाओं की परत द्वारा घिरा रहता है, जिसको जनन एपीथीलियम (germinal epithelium) कहते हैं।

माइटोसिस तथा प्रियॉसिस द्वारा जनन-एपीथीलियम की दीवारों से एक ओवम की उत्पत्ति होती है यह फोलीकल में बढ़ता है। इसमें फोलीकल तरल भरा रहता है। जब स्यूनिका का आकार बढ़ जाता है तो उसे ग्राफिन फोलीकल कहते हैं।

(ब) सहायक लैंगिक भाग (Assential Sex Organs)–यह निम्न भाग है-

(1) गर्भाशय नाल,

(2) गर्भाशय,

(3) ग्रीवा,

(4) योनि,

(5) गर्भ तथा भगशेफ।

(1) गर्भाशय नाल (Fallopian tube or oviduct)–यह एक पतली लम्बी नली होती है जो कि अण्डाशय के पास कीप के रूप में बदल जाती है जिसको इनफन्डीबुलम कहते हैं। यह अण्डाशय के चारों तरह रहता है परन्तु जुड़ा नहीं होता है। अण्डाशय में जो अण्ड (ovum) निकलता है, वह तुरन्त ही इनफण्डीबुलम में आ जाता है और गर्भाशय नाल में ठहर जाता है। गर्भाशय नाल संकरी होती है, परन्तु आगे यह चौड़ी हो जाती है, जिसे एम्पुला कहते हैं तथा एम्पुला में ही अण्ड (ovum) का निषेचन (fertilization) होता है।

(2) गर्भाशय (Uterus)–गर्भाशय में तीन पर्त पाई जाती है- बाहरी बाह्य कला (scrosa), मध्य की पेशीस्तर (mescularis) तथा आन्तरिक (mucosa)। गर्भावस्था के समय आन्तरिक परत से एक गर्भाशय दुग्ध निकलता है जो भ्रूण को पालता है। गर्भाशय के सींग (uterinc horns) में भ्रूण पलता है।

(3) ग्रीवा (Cervix)–यह गर्भाशय के नीचे वाला भाग होता है। यह गर्भाशय तथा योनि के मध्य स्थिर रहता है। इसका मुँह बच्चा देने के समय अथवा जब गाय स्त्रीमद (heat) में हो तभी खुलता है, अन्यथा बन्द रहता है। इसमें एक द्रव होता है जो गाय के स्त्रीमद (heat) में आने पर ही बाहर निकलता है तथा ग्रीवा का एक भाग योनि में बदल जाता है जो एक छिद्र के रूप में दिखाई देता है। इसे योनिछिद्र (vaginalos) कहते हैं। इसकी लम्बाई 4'' (इन्च) व व्यास 1'' होता है। इसके द्वारा शुक्राणु गर्भाशय मे पहुँचते है।

(4) योनि (Vegina)–पशुओं में योनि रेक्टम तथा ब्लेडर के नीचे पायी जाती है। यह भी तीन परतों की बनी रहती है, जिन्हे श्लेष्मकला, पेशीस्तर तथा बाह्यकला कहते हैं। इसकी दीवारें लचीली होती हैं तथा इसमें श्लेष्म निकलता रहता है। लम्बाई 8'' (इन्च) से 10'' (इन्च) तक होती है। शिश्न के द्वारा इसमें वीर्य एकत्र कर दिया जाता है।

(5) भग तथा भगसेफ (Vulva and Clitoris)–मादा जननांग का सबसे बाहर खुलने वाला भाग भग कहलाता है। जब गाय स्त्रीमद (heat) में होती है तो भग फूल जाता है तथा दीवारों पर लैंगिक संवेशन के समय अधिक क्रियाशील हो जाती है। इनमें दो भगओष्ठ पाये जाते हैं जिनके ऊपर स्पर्श रोम होते है। दोनों ओष्ठ मिलकर पृष्ठीय तथा आधार समालित बनाते है। इसके ऊपर ऊतकों का उभार-सा होता है जिसे भगसेफ कहते है।

प्रश्न 25. पशु प्रजनन से क्या आशय है? प्रजनन के उद्देश्य लिखिए।

What is the meaning of breeding of Cattle? Write the aims of Cattle Breeding.

उत्तर-

पशु प्रजनन

प्रत्येक जीवधारी अपनी वंश परम्परा बनाये रखने के लिये नर व मादा आपस में सम्भोग करते है तथा सन्तान पैदा करते है। अतः ''जीवधारियों की वह कला जिसमें वह अपने जैसे ही अन्य जीवधारी पैदा करते है, प्रजनन कहलाती है।''

प्रजनन पद्धति से हमारा तात्पर्य है कि नर और मादा को चुना जाये और प्रजनन कराकर इच्छित गुणों वाला पशु प्राप्त किया जाये। प्रजनन कराने से पहले यह अच्छी तरह अध्ययन कर लेना चाहिये कि कौन-सी प्रजनन विधि (Breeding method) अपनायी जाये जिससे हमें इच्छित गुण वाले पशु प्राप्त हो सकें प्रजनन विधि से सफलता असफलता पशुओं की आनुवांशिक रचना (Genetic construction) पर निर्भर करती है। साथ ही साथ जनन कोशिकाओं के ऊपर भी प्रजनन पद्धतियों की सफलता-असफलता बहुत हद तक निर्भर करती है। इसलिए प्रजनन पद्धति तभी सफल हो सकती है जबकि प्रजनन के प्रयोग किये जा रहे, पशु उत्तम पैतृक गुण वाले हों या फिर बच्चों के अन्दर अच्छे जीन लाये जायें, अत: प्रजनक को प्रजनन सम्बन्धी पूर्ण जानकारी होनी चाहिये।

पशु प्रजनन के उद्देश्य (Aims of Cattle Breeding)

पशु प्रजनन का मुख्य उद्देश्य अपने पशुओं की उत्पत्ति करके एक ऐसा आदर्श झुण्ड बनाना है जो मनुष्य जाति के लिए लाभदायक सिद्ध हो।

पशु प्रजनन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है-

(1) पशु शीघ्रता से युवा (Mature) हो।
(2) पशुओं में सहनशीलता बढ़ जाये।
(3) भार वाहन एवं कृषि कार्य हेतु अच्छे बन सकें।
(4) पशु जाति की उन्नति के लिए।
(5) उत्तम पशु बनाने के लिए।
(6) पशु समूह की उन्नति के लिए।
(7) पशु सभी प्रकार के वातावरण में रह सकें।
(8) दूध में मक्खन की प्रतिशत मात्रा बढ़ जाये।
(9) वे नियमित रूप से बच्चे देने वाले हों।
(10) पशु अधिक समय तक जीवित एवं उत्पत्ति योग्य रहें।
(11) अधिक उत्पादक बनें।
(12) उनमें रोगों से बचने की सामर्थ्य (शक्ति) हो।

अच्छे पशु प्रजनक के गुण

(1) वह पशुपालन में विशेष रुचि रखता हो।
(2) अच्छे पशुओं के चुनाव तथा खराब की छंटनी करने में अधिकाधिक क्षमता हो।
(3) वह बहुत ही कार्यकुशल तथा धैर्यवान हो।
(4) उसमें अपने काम के प्रति सच्ची लगन हो।
(5) वह एक कुशल प्रबन्धक तथा अवसरवादी हो।
(6) प्रजनन के ढंगों की लाभ-हानि की उसे पूर्ण जानकारी हो।
(7) उसे पशुओं के रख-रखाव तथा खान-पान के बारे में पूरी जानकारी हो।

प्रश्न 26. पशु प्रजनन की प्रमुख विधियाँ बतलाइए।
Describe the main methods of Breeding.

उत्तर-

पशु प्रजनन की प्रमुख विधियाँ

1. अन्तः प्रजनन (In Breeding)—इस विधि में सम्बन्धित नर व मादा पशुओं में परस्पर सम्भोग कराया जाता है। परस्पर सम्भोग का तात्पर्य है कि 4 से 6 पीढ़ी तक के सम्बन्धित पशु होने चाहिए। अन्य प्रकार व अन्य वंश के पशु शामिल नहीं हैं।

इसे दो भागों में बाँटा गया है-

(1) सम प्रजनन (Close Breeding)—इसमें पशुओं के निकट सम्बन्ध से सम्भोग (mating) कराया जाता है; जैसे-

(1) सगा भाई X सगी बहन (Full bróther X Full sister)
(2) माँ X बेटा (dam x son)
(3) पिता x बेटी

(2) अन्तरवंश प्रजनन (Line Breeding)—इसमें कम सम्बन्धित पशुओं का सम्भोग कराया जाता है अर्थात् सम प्रजनन के अलावा जो भी पशु 4 से 6 पीढ़ी से सम्बन्धित हैं इन मिलाये जाते हैं। प्रजनन की यह विधि किसी खास पूर्वज के अच्छे गुणों को उसकी सन्तान में स्थिर बनाये रखने के लिए की जाती है; जैसे-

(1) चचेरा भाई X चचेरी बहन
(2) बाबा x पोती
(3) पोता X दादी

अन्तर वंश प्रजनन के प्रभाव (Effect of Line Breeding)

(1) इसमें प्रभाव कम पड़ता है क्योंकि पशु का सम्बन्ध दूर का सम्बन्ध होता है। अत: कम गुणों का विकास हो पाता है।
(2) पशुओं में दूसरे पशु के गुण उसकी आपस की नजदीकी सम्बन्ध में आते हैं तथा घनिष्ठता पर गुण की प्रतिशतता निर्भर करती है।
(3) यह रक्त को संकेन्द्रित रखता है, जिससे लक्षणों को स्थिर बनाये रखता है। चाहे वे अच्छे हो या बुरे।
(4) इस विधि में साँड़ों को अपने गुण अपनी सन्तान में भेजने में सुलभता रहती हैं।
(5) पशु की वृद्धि दर कम होती है।
(6) इसमें आनुवंशिकी (heredity) बढ़ती है तथा भिन्नता कम होती है जिससे नये पशु नहीं बनते हैं।
(7) अनैच्छिक पशु पैदा होते हैं।
(8) जनन क्षमता कम हो जाती है।
(9) पशुओं की शक्ति घटती है।

(10) दूध की मात्रा घटती है, परन्तु कुछ लोग बढ़ता हुआ बताते हैं
(11) अवगुण तथा मृत्यु की दर बढ़ जाती है।
(12) एकरूपता बढ़ती है अर्थात् पशु समान रूप से पैदा होते है।

अन्तर वंश प्रजनन के लाभ

(1) पशुओं के परिवार को अलग-अलग छाँटा जा सकता है।
(2) पशुओं के गुण अपनी सन्तान में बढ़ते हैं।
(3) पशुओं में भिन्नता कम आती है।
(4) पशुओं में पैत्रिकता बढ़ती है।
(5) इसमें रक्त का संकेन्द्रीकरण होता है।
(6) पशुओं के चुनाव में सरलता मिलती है।
(7) नई जाति नहीं बन पाती है।
(8) पशुओं के झुण्ड में समानता बढ़ती है।
(9) अज्ञात पशु से एक शुद्ध नस्ल प्राप्त करने का अच्छा तरीका है।

अन्तर वंश प्रजनन के दोष

(1) पशुओं की जनन क्षमता घट जाती है।
(2) रोगों का प्रभाव शीघ्र होता है
(3) अनैच्छिक पशु अधिक बढ़ जाते हैं।
(4) भ्रूण व बच्चों में मृत्यु दर बढ़ जाती है।
(5) पशुओं की वृद्धि दर कम हो जाती है।
(6) दुग्ध उत्पादन की मात्रा तथा प्रतिशत वसा में कमी आती है।

(2) बाह्य प्रजनन (Out Breeding)—इसमें 5 से 6 पीढ़ियों तक सम्बन्ध न होने पर सम्भोग कराया जाता है अर्थात् पशु का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं होता। नया नर व नयी मादा होती है। इनका आपस में किसी भी पीढ़ी से सम्बन्ध नहीं होना चाहिए।

इसमें नये-नये गुण वाले पशु पैदा होते हैं। पशुओं के गुणों में समानता नहीं होती बल्कि असामान्य गुणों वाले पशु पैदा होते हैं अर्थात् इस विधि से नये गुण वाले पशु पैदा किये जाते हैं।

बाह्य प्रजनन की विधियाँ (System of Out Breeding)

बाह्य प्रजनन की विधियों को अग्रलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है-

1. भिन्न संकरण (Out Crossing)—इस विधि के अन्तर्गत एक ही शुद्ध नस्ल के असम्बन्धित पशुओं के नर-मादाओं में पारस्परिक सहवास होता है।

अच्छे परिणाम लेने के लिये इस विधि के अनुसार पशु-प्रजनक शुद्ध नस्ल के अच्छे गुणों वाले साँडों का चयन करके, उनको उसी नस्ल की असम्बन्धित मादाओं से सहवास

करवाते हैं। अत: इस प्रकार वरण (Selection) करके सहवास कराने की विधि को समूह वरण (Mass selection) भी कहते हैं। इस विधि से प्रजनन एवं वरण करके, पशुओं की बहुत ही शीघ्र उन्नति की जा सकती है। गिरी हुई नस्ल को सुधारने के लिए यह ढंग सर्वोत्तम है।

2. प्रसंकरण (Hybridization)—पशु-प्रजनन का वह ढंग, जिसके अन्तर्गत विभिन्न जाति अथवा प्रजाति के नर-मादाओं में पारस्परिक सहवास होकर सन्तानोत्पत्ति होती है, प्रसंकरण (hybridization) कहलाती है; जैसे- घोड़ी और गधे से सम्भोग होकर खच्चर (mule) पैदा होना, जो अपने माता-पिता से बिल्कुल ही भिन्न एक नया जीव होता है। इस प्रकार उत्पन्न सन्तान प्रसंकर (hybrid) कहलाती है।

3. क्रमोन्नति (Grading Up)—प्रजनन की इस विधि के अन्तर्गत अच्छी नस्ल के कुछ चुने हुये साँड़ों को देशी एवं अशुद्ध किस्म की मादाओं से मिलाया जाता है। इस प्रकार इनसे जो मादा बच्चे पैदा होते हैं, उनका पुन: पीढ़ी दर पीढ़ी तक इन्हीं शुद्ध नस्ल के साँड़ों से प्रजनन कराया जाता है। इसके फलस्वरूप 6-7 पीढ़ियों में ही अशुद्ध पशुओं का यूथ बिल्कुल शुद्ध जैसा हो जाता है। अत: क्रमोन्नति प्रजनन की वह विधि है, जिसके द्वारा कुछ चुने हुए नस्ल के साँड़ एक अशुद्ध नस्ल की पशु संख्या को शीघ्र ही शुद्ध यूथ में बदल लेते हैं।

प्रजनन की यह विधि केवल उन्हीं नस्लों के पशुओं में लागू करना उपयुक्त है, जो स्थानीय वातावरण में, जिनमें कि उनके बच्चों को पनपना है, भली-भाँति घुल-मिल गये हों।

4. संकरण (Cross Breeding)—संकरण वह समागम प्रणाली है, जिसके अन्तर्गत भिन्न शुद्ध नस्लों के पशुओं के बीच समागम कराया जाता है।

भारतवर्ष में गौ- पशु, भेड़, बकरी, मुर्गी और सुअरों के विकास के लिए संकरण का कार्य व्यापक स्तर पर चलाया जा रहा है। हमारे देश में गौ-पशुओं की संख्या 193 मिलियन के लगभग है और कुल दुग्ध उत्पादन के हिसाब से भारत का दुनिया में प्रथम स्थान है, परन्तु प्रति पशु औसत दुग्ध उत्पादन के हिसाब से भारत बहुत देशों से पीछे रह जाता है। इसका मुख्य कारण कम दुग्ध उत्पादक पशुओं की आनुवंशिक क्षमता (जो दुग्ध उत्पादन के लिए उत्तरदायी है) का कमजोर होना है। देश के वे क्षेत्र, जहाँ पर साहीवाल, गिर एवं हरियाणा आदि उन्नत नस्ल के पशु नहीं हैं या पशुओं की उत्पादन क्षमता कम है या बड़े-बड़े शहरों के नजदीक हैं में विदेशी नस्ल के द्वारा संकरण कराया जा सकता है। संकरण का उद्देश्य देशी तथा विदेशी नस्लों के संगम से ऐसे पशु उत्पन्न करना है जो भारतीय वातावरण को सहन कर सके तथा अधिक दुग्ध उत्पादन कर सकें। होल्सटीन फ्रीजियन, जर्सी और रेड डैनिस मुख्य नस्लें हैं जो संकरण के लिए प्रयोग की जा रही हैं।

संकरण प्रणाली के मुख्य लाभ

(1) दुग्ध उत्पादन क्षमता 25-50 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।
(2) वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी होती है।

(3) प्रथम ब्यांत की उम्र कम हो जाने के कारण पशु की कुल ब्यांत बढ़ जाती है।
(4) शुष्क काल कम हो जाता है और दुग्ध उत्पादन अवधि बढ़ जाती है
(5) प्रजनन क्षमता मे भी सुधार आता है।
(6) आकार, उत्पादन, शारीरिक भार तथा विकास आदि में वृद्धि होती है।
(7) पैतृक गुणों के प्रवेश का अध्ययन किया जा सकता है कि नये बच्चों में गुण किस प्रकार आते हैं।
(8) इच्छित गुणों को नई जाति में प्रवेश किया जा सकता है।
(9) नई जाति से व्यावसायिक रूप में अधिक से अधिक धन प्राप्त होता है।

हानियाँ

(1) इस विधि से पैदा हुए पशुओं में प्रजनन शक्ति कम होती है क्योंकि इनके गुणों में भिन्नता बढ़ती है।
(2) पशुओं में रोग से बचने की तथा सहन करने की शक्ति कम हो जाती है।
(3) पशु प्रतिकूल वातावरण सहन नहीं कर सकते हैं।
(4) इस विधि में दो या दो से अधिक शुद्ध जातियों का होना आवश्यक है।
(5) प्रथम पीढ़ी के बाद पशुओं के अन्दर जो गुण होते हैं वे कम हो जाते हैं तथा 4-5 पाढ़ी बाद यह पशु अपने माता-पिता के गुणों से भी खराब हो जाते हैं।

संकर योजना की निम्नलिखित बातें मुख्य हैं-

(1) प्रथम पीढ़ी में बछड़े या बछिया उत्पन्न करने के लिए विदेशी नस्ल के साँड़ का देशी नस्ल की गाय से संस्करण कराते हैं।
(2) साँड से 50 प्रतिशत लक्षण एवं गाय से भी 50 प्रतिशत लक्षण, उनके बछड़े या बछिया में आयेंगे।
(3) विदेशी नस्ल के लक्षण 75 प्रतिशत से अधिक नहीं होने चाहिए, क्योंकि इससे उत्पादन क्षमता एवं प्रजनन क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

संकरण के उद्देश्य (Object of Cross Breeding)

(1) नई जाति उत्पन्न करने के लिए।
(2) सन्तान अधिक उत्पन्न करने के लिए।
(3) आर्थिक उत्पादन करने के लिए।
(4) वृद्धि में तीव्रता करने के लिए।
(5) जाति में इच्छानुसार गुण उत्पन्न करने के लिए।
(6) रोग से बचने के लिए, अधिक शक्ति प्रदान करने के लिए।

प्रश्न 27. संकरण की विधियाँ बतलाइए।
Describe the methods of Cross Breeding.

उत्तर- संकरण की विधियाँ (Methods of Cross Breeding)

संकरण के लिए अच्छे साँड़ की उपलब्धता एवं उद्देश्य आदि के आधार पर निम्न में से कोई भी प्रणाली अपनायी नही जा सकती है-

(1) त्रिसंकरण (Triple Crossing)–इस विधि द्वारा संकरण में तीन शुद्ध नस्लें प्रयोग की जाती है। इसके फलस्वरूप जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसमें 50 प्रतिशत आनुवंशिकता (लक्षण) तात्कालिक साँड़ की नस्ल से एवं 25-25 प्रतिशत आनुवंशिकता अन्य दो नस्लों की होती है। इस विधि द्वारा संकरण का मुख्य उद्देश्य तीन नस्लों के श्रेष्ट गुणों का उपयोग करने के लिए या तीनों नस्लों के मिश्रण से नई नस्ल तैयार करने के लिए किया जाता है।

उदाहरणार्थ, यदि साहीवाल नस्ल की गाय का संकरण जर्सी नस्ल के साँड़ से करायें एवं इस तरह उत्पन्न सन्तति का रेड डेनिश नस्ल के साँड़ से संकरण करायें तो यह संकरण त्रिसंकरण होगा। इस प्रकार से द्वितीय पीढ़ी में सन्तान में ५० प्रतिशत आनुवंशिकता रेड डेनिश नस्ल से प्राप्त होगी और २५-२५ प्रतिशत आनुवंशिकता जर्सी एवं साहीवाल नस्ल से होगी।

इससे उत्पन्न जो सन्तान होती है उसमें लगभग $\frac{4}{7}$ भाग रूप अपने तात्कालिक पिता का $\frac{2}{7}$ भाग नाना का तथा शेष भाग $\frac{1}{7}$ रूप तीसरी प्रयोग की हुई नस्ल का होता है। यह विधि अधिक गोश्त के लिए पाले गये पशुओं में अपनाते हैं।

(2) चरम संकरण (Top Crossing)–जब गाय अपने वंशावली के अन्तिम साँड़ से मिलाई जाती है तो इसे संकरण कहते हैं। इस प्रकार का प्रजनन विभिन्न प्रकार के कुटुम्बों में होता है।

(3) क्रिस संकरण (Criss Crossing)–"दो शुद्ध जातियों के नर-मादाओं (पशु) को एकान्तर (Alternative) रूप में मिलाया जाता है तो इसे क्रिस कोसिंग कहते हैं।" इससे पैदा हुए मादा बच्चों में लगभग $\frac{2}{3}$ रूप तात्कालिक पिता से $\frac{1}{3}$ दूसरी प्रयोग हुई जाति से आता है। इस विधि में प्रत्येक पीढ़ी में उत्पन्न हुए पशु अपनी प्रथम श्रेणी के पशु से मिलकर होते रहते हैं; जैसे-इसमें दो शुद्ध नस्ल के पशु मादा 'क', नर 'ख' का सम्भोग कराया गया, इस प्रकार जो मादा पैदा हुआ (P) उसको 'क' नस्ल के साँड़ से मिलाया। इसके बाद इनसे जो मादा बच्चा पैदा हुआ (M) उसको 'ख' नस्ल से मिलाया इस क्रोस से जो मादा बच्चा (N) मिला। उसे नस्ल 'क' से मिलाया। इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्त में जो सन्तान हुई उसमें $\frac{2}{3}$ रूप अपने तात्कालिक पिता 'क' तथा शेष $\frac{1}{3}$ रूप 'ख' होगा।

(4) पितृ संकरण (Back Crossing)–इस विधि से जब संकर पशु को फिर से अपने पूर्वजों से सम्बन्धित साँड़ जो अलग जाति का हो मिलाया जाता है उसे पितृ संकरण कहते हैं या इसमें दो विभिन्न नस्लों के नर-मादा के संयोग से जो सन्तान पैदा होती है उसका पुनः अपने पूर्वजों से सम्भोग कराया जाता है वह पितृ संकरण कहलाता है। ऐसा प्रथम

पीढ़ी मे युग्मकीय अनुपात (genetic proporation) देखने या कोई विशेष गुण स्थानान्तरित करने के लिए किया जाता है।

(5) चतुः संकरण–इस विधि द्वारा संकरण में चार नस्लें प्रयोग की जाती हैं। पहले दो-दो नस्लों (प्रत्येक में एक देसी नस्ल) के संकरण से दो प्रथम संकर प्राप्त किये जाते हैं (पहले पीढ़ी) और इसके बाद अगली पीढ़ी में इन दोनों प्रथम संकर में से एक का साँड़ एवं एक की गाय लेकर संकरण कराते हैं। इस प्रकार उत्पन्न द्वितीय संकर में चार नस्लों के गुण होंगे एवं प्रत्येक नस्ल के 25-25 गुण होंगे।

एक साधारण विधि यह भी है कि जिस प्रकार के लक्षण मादा में हैं, वैसे ही लक्षणों वाला साँड़ यदि संकरण के लिए प्रयोग करें, तो सन्तान की आनुवंशिकता में परिवर्तन नहीं होगा और सन्तान माता-पिता के लक्षणों वाली ही होगी। इस प्रकार से उत्पादन क्षमता को परिरक्षित किया जा सकता है, जिसे वरण द्वारा भी बढ़ाया जा सकता है।

(6) रोटेशनल क्रॉसिंग–घरेलू पशुओं में प्रजनन की एक प्रणाली जिसमें दो नस्लों के बीच संकरण से उत्पन्न मादा संतान को तीसरी नस्ल के नर से पैदा किया जाता है और दूसरे संकरण से उत्पन्न मादा संतान को फिर इस्तेमाल की गई दो नस्लों में से किसी एक के नर से पाला जाता है, रोटेशनल क्रॉसिंग कहालाता है।

प्रश्न 28. मादा पशुओं की प्रजनन संबंधी जानकारी दीजिए।

Give information related to reproduction of Female animals.

उत्तर- **मादा पशुओं की प्रजनन सम्बन्धी जानकारी**

क्रमांक	प्रजनन मद	गाय	भैंस	बकरी	भेड़
1.	यौवनारम्भ	24 से 30 महीने	30 महीने	10 से 15 महीने	10 से 12 महीने
2.	प्रथम प्रजनन पर औसत आयु	36 से 40 महीने	36 महीने	18 से 19 महीने	12 से 18 महीने
3.	मद चक्र की अवधि	21 दिन	21 दिन	21 दिन	16 से 17 दिन
4.	मद काल की अवधि	18 से 24 घण्टे	12 से 24 घण्टे	1 से 3 दिन	1 से 2 दिन
5.	अण्डाणु क्षरण का समय (मद काल समाप्ति के पश्चात्)	7 से 14 घण्टे	4 से 30 घण्टे	12 से 24 घण्टे	12 से 24 घण्टे
6.	प्रजनन का ठीक समय	मदकाल के अन्तिम	मदकाल के अन्तिम 8	मदकाल शुरू होने	मदकाल शुरू होने

		8 घण्टे	घण्टे	के 12 से 20 घण्टे	के 12 से 20 घण्टे
7.	गाभिन अवधि	282 दिन	310 दिन	151 दिन	151 दिन
8.	ब्याने के पश्चात् फिर मदकाल आने का समय	4 से 12 सप्ताह	0 से 26 सप्ताह	3 से 5 सप्ताह	3 से 5 सप्ताह
9.	प्रजनन का ठीक समय (ब्याने के पश्चात्)	2 से 3 महीने	2-3 महीने	2 महीने	आने वाले प्रजनन काल में
10.	दो ब्यांत के बीच का समय	14 से 16 महीने	16-20 महीने	9 से 12 महीने	12 महीने

प्रश्न 29. भारत में पशु प्रजनन की प्रमुख समस्याएँ बतलाइए।

Describe the problems of animal breeding in India.

उत्तर- **भारत में पशु प्रजनन की समस्यायें**

(Problems of Animal Breeding in India)

हमारे देश में पशु प्रजनन से सम्बन्धित अनेक प्रकार की समस्यायें हैं, जो निम्नलिखित हैं-

(1) कृत्रिम गर्भाधान (Artificial Insemination)–अच्छी नस्ल के साँड़ की हमारे देश में बहुत अधिक कमी है। अधिकतर गाँवों में प्राकृतिक विधि द्वारा ही साँड़ों से गाय को गर्भित किया जाता है। इससे अच्छी नस्ल की सन्तानें उत्पन्न नहीं हो पाती हैं। सरकार द्वारा खोले गये कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों को उपयोग में कम लाया जाता है।

(2) पशुओं के रोग (Diseases of the Animal)–पशुओं में अनेकों जननेन्द्रिय रोग जैसे-संक्रामक, गर्भपात, बाँझपन आदि पाये जाते हैं जो कि प्रजनन कार्यक्रमों को भली-भाँति चलाने में बाधक होते हैं। इसके अतिरिक्त पशुओं के ब्याहने के बाद कई प्रकार के रोग; जैसे- थनैला रोग, गर्भाशय स्रोत, गर्भाशय रोग इत्यादि उत्पन्न हो जाते हैं। पशुओं की ब्याते समय देखभाल करना आवश्यक है।

(3) उचित चारा- दाना (Proper feeding)–पशुओं की नस्ल सुधारने के बाद उन्हें सन्तुलित व अच्छे गुणों वाला भोजन नहीं दिया जाता है। इस कारण उनसे अधिक उत्पादन नहीं लिया जा सकता है देश में चारे-दाने की अधिक कमी है और उसका उपयोग भी समयानुसार उचित प्रकार से नहीं किया जाता है जो कि प्रजनन कार्यक्रमों को सुचारू रूप से चलाने के लिए बाधक है।

(4) प्रजनन अभिलेख (Breeding Records)–भविष्य मे अच्छी नस्ल की सन्तान पैदा करने के लिए अभिलेख रखना अति आवश्यक है। यदि माता-पिता के उचित अभिलेख

रखे जाते है तो उनका चयन करने मे सुविधा रहती हैं

(5) अन्य समस्यायें (Other Problems)–इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रकार की प्रजनन समस्याये है जो कि पशु विकास मे अधिक बाधक है-

(1) गाय का देर से युवा होना।

(2) नवजात बच्चों मे मृत्यु दर का प्रतिशत अधिक होना।

(3) सूखे हुए पशुओं की संख्या अधिक होना।

(4) देश में प्रजनन कार्यो को वैज्ञानिक ढंग से चलाने के लिए कुशल कार्यकर्ताओं की कमी।

(5) गाय का ऋतुकाल ठीक समय पर न होना।

उपाय–देश में पशुओं की संख्या अधिक एवं दूध का उत्पादन कम है जिसका सुधार उन्नत तरीकों से ही सम्भव है। पशुओं की उन्नति के उपाय निम्न हैं-

(1) बढ़िया किस्म तथा उच्च श्रेणी के पशुओं को खराब किस्म के पशुओं से छाँटना और इन पशुओं की नस्ल को सुधारना, फिर इनमें से उच्च श्रेणी के पशुओं को छाँटना चाहिए।

(2) हर प्रकार की बीमारियों से पशुओं की उचित रूप में रक्षा होनी चाहिए।

(3) उत्तम प्रकार के चारे और दाने पर्याप्त मात्रा में सभी पशुओं को प्राप्त होना चाहिए। छटे हुए बढ़िया किस्म के पशुओं के लिए सन्तुलित आहार मिलना चाहिए।

(4) पशुओं का उचित रूप में प्रबन्ध होना चाहिए।

प्रश्न 30 नवजात बछड़े की देखभाल किस प्रकार करना चाहिए?
How should newborn calf be taken care of?

उत्तर- नवजात शिशु (बछड़े व बछियों) की देखभाल करना
(Care of Newly Born Calf)

भारतवर्ष में प्राय: प्रत्येक वर्ष लगभग 50% गाय तथा भैंसों के बच्चों की मृत्यु उचित देखभाल न करने के कारण होती है। इस मृत्यु दर को रोकने के लिए तथा गाय या भैंसों के बच्चे स्वस्थ रहें; इसके लिए यह जरूरी है कि पशुपालक नवजात बच्चों पर शुरू में ज्यादा ध्यान दें।

गाय या भैंस के ब्याने के पश्चात् दो तरह से उनके बच्चों को दूध पिलाया जाता है-

(1) सीधे ही बच्चे का थनों में मुँह लगाकर दूध पीना।

(2) अलग से प्लास्टिक के कटोरे में या अन्य बर्तन में दूध डालकर दूध पिलाना।

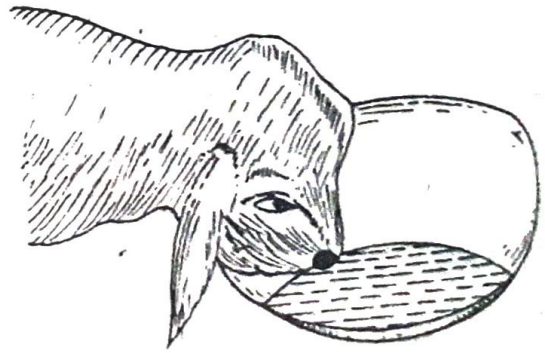
(1) सीधे ही बच्चे का थनों में मुँह लगाकर दूध पीना–इस विधि से प्राय: साहीवाल, हरियाणा नस्ल की गाय तथा भैंस के वच्चों को दूध पीते हुए देखा गया है क्योंकि इस नस्ल की गाय अपने बच्चों से ज्यादा प्यार करती हैं तथा बच्चे की उपस्थिति में ही दूध दुहाती हैं। भैंसों में भी यही भावना अपने वच्चों के प्रति देखी गई है।

इस विधि से यह लाभ है कि बच्चे को सीधे ही दूध प्राप्त हो जाता है। यदि किसी बर्तन में निकालकर दूध पिलाया जाता है तो दूध में कई प्रकार के विषाणु प्रवेश कर जाते हैं जिससे विषाणुयुक्त दूध का सीधा असर बच्चे की पाचन शक्ति पर पड़ता है एवं इससे कई प्रकार की बीमारियाँ फैल जाती हैं; जैसे- दस्त, कब्ज आदि।

(2) अलग से प्लास्टिक के कटोरे या अन्य बर्तन में दूध डालकर पिलाना–यह तरीका अधिकतर क्रॉस बीड्स (संकर नस्ल), विदेशी नस्ल की गायों में ही उपयोग में लाया जाता है; जैसे- जर्सी, रेड डेनिश, हालिस्टीन फ्रीजियन तथा इनके क्रॉस। इसमें सर्वप्रथम बच्चे के शरीर का वजन किया जाता है तथा बच्चे के शरीर के वजन का 1/10वाँ भाग दूध लीटर द्वारा मापकर बच्चे को पिलाया जाता है। सीधे दूध को निकालकर बर्तन में मापकर नहीं पिलाना चाहिए।

इस विधि में दूध को एक बड़े बर्तन में दो-तीन बार उबालकर दूध को ठण्डा कर लेते हैं तथा इसमें 2 से 5% विटामिन्स एवं एण्टीबायोटिक पाउडर मिला देते है जिससे दूध का स्वाद भी बदल जाता है तथा बच्चा इस दूध को आसानी से पी लेता है।

प्राय: गाय अथवा भैंस का बच्चा शुरू के 2-3 दिन खीस (कोलस्ट्रम) ही पीता है जिसमें प्रोटीन, फास्फेट, केसीन, विटामिन 'ए' एवं उच्च मात्रा में वसा पाया जाता है। यह बच्चे के शरीर में पहुँचकर बच्चे की बीमारियों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करता है। अगर शुरू के दिनों में बच्चे को कोलस्ट्रम न दिया जाय तो बच्चे कमजोर तथा तरह-तरह की बीमारियों से अपने आप घिर जाता है। इसलिए शुरू के 2-3 दिन बच्चे को कोलस्ट्रम पिलाना जरूरी है। कोलस्ट्रम पीने के कुछ दिनों पश्चात् बच्चा केवल दूध पर ही निर्भर रह जाता है। बच्चे की वृद्धि के लिए उसका थोड़ा-थोड़ा मुँह चलाना भी आवश्यक है। उसके लिए हम बच्चे के मुँह में हरी पत्तेदार घासें; जैसे- दूब घास, जई की पत्तियाँ, ज्वार की मुलायम पत्तियाँ बच्चे के मुँह को खोलकर किनारे से डाल देते हैं। इस तरह बच्चे को मुँह चलाने की आदत पड़ जाती है और फिर वह स्वयं ही चारा खाने लग जाता हैं।



चित्र–गाय के बछड़े को बाहर से दूध पिलाना

गर्मियों के दिनों मे बच्चे को मट्ठा भी थोड़ी मात्रा में पिलाना चाहिए। अगर मट्ठा उपलब्ध न हो तो 20-30 मिली. सरसो का तेल पिलाना चाहिए। यह कार्यक्रम 2 से 3 महीने तक ही करना चाहिए। इस प्रकार बच्चा स्वयं ही पूर्ण मात्रा मे चारा खाने लग जाता है। इस समय थोड़ी मात्रा में दाना भी देना चाहिए।

एक महत्वपूर्ण बात ध्यान देने योग्य यह है कि बच्चे को ब्याने के 35 दिन पर डिवार्मिंग के लिए 10-12 मिली. पिपराजिन नामक औषधि अवश्य दे देनी चाहिए क्योंकि नवजात बच्चे के पेट में केंचुए की तरह के कीड़े जो कि गुच्छे के रूप में देखने को मिलते हैं, पैदा हो जाते है। दूसरी खुराक इसी दवा की (10-12 मिली) 21वें दिन पिलाई जानी चाहिए।

गर्मियों में अधिकतर बच्चों के बालों में जुए पैदा हो जाते हैं जो बच्चे का खून चूस लेती है। इसका भी सीधा असर बच्चे की वृद्धि पर पड़ता है। इसके लिए पेस्टोबेन तथा हरबोटिक पाउडर बच्चे के शरीर पर डालकर नहला देना चाहिए तथा बच्चा जहाँ बँधता है उस स्थान को उचित प्रकार साफ रखना चाहिए।

ठण्ड के दिनों में बच्चों को बहुत जल्दी सर्दी पकड़ लेती है इसके लिए बच्चे के नीचे पुआल का बिछौना उचित प्रकार से रखना चाहिए। ज्यादा बीमार होने पर पशु चिकित्सक की तुरन्त सलाह लेनी चाहिए। अन्त में इन दोनों विधियों की तुलना करने पर एक-दूसरे के कुछ लाभ तथा हानियाँ देखने को मिलती हैं।

सीधे बच्चों को थनों से लगाकर दूध पिलाकर पालना या प्राकृतिक विधि से बच्चे पालने से निम्न लाभ-हानि होते हैं-

प्राकृतिक विधि से बच्चे पालने से लाभ–

(1) बच्चों को माँ का दूध अधिक समय तक पिलाते रहने के कारण उसकी शारीरिक बढ़ोत्तरी अच्छी प्रकार होती है।

(2) बच्चे में प्रतिकूल वातावरण को सहन करने की शक्ति आ जाती है।

(3) माँ बच्चा एक साथ रहते हैं जिससे दोनों प्राकृतिक वातावरण को अनुभव करते हैं एवं सन्तुष्ट रहते हैं।

प्राकृतिक विधि से हानियाँ–

(1) इस विधि में बच्चों को दूध केवल अन्दाज में पिलाया जाता है अत: उसे कम और ज्यादा दूध मिल जाता है। इसलिए बच्चे में कम अधिकता की सम्भावना रहती है।

(2) बच्चे को अन्दाज में दूध पिलाते हैं। अत: उसकी वास्तविक आवश्यकता का पता नहीं होता है।

(3) अधिक दूध पीने के कारण बच्चे बीमार हो जाते हैं।

(4) गाय की वास्तविक उपज का पता नहीं चलता है।

(5) गाय की बीमारी बच्चे को लग सकती है।

(6) बच्चे की अचानक मृत्यु होने पर गाय दूध नहीं देती है।

(7) यदि किसी कारण से गाय मर जाये, तो बच्चे का पालना कठिन हो जाता है

(8) बच्चा गाय के थन काट देता है।

(9) ग्वाला दूध की चोरी कर सकता है।

दस्त, पेट फूल जाना अथवा बच्चे की अचानक मृत्यु भी हो जाती है। दूसरा भैंसों अथवा साहीवाल आदि नस्ल में पूरी दुहान अवधि में बच्चे को दूध दुहाने के समय छोड़ना, हटाना, बाँधना पड़ता है जिससे कभी थन भी बच्चे के दाँतों द्वारा कट जाते हैं तथा थनों में घाव हो जाते हैं।

दूसरी विधि में बर्तन में दूध डालकर पिलाया जाता है इसमें कभी-कभी पशुपालक दूध को उचित प्रकार से गर्म नहीं करते हैं तथा जल्दबाजी में आधा गर्म दूध पिला देते हैं। इस कारण बच्चों को दस्त एवं अन्य बीमारियाँ लगने की सम्भावना रहती है।

यदि किसी कारणवश बच्चे को कोलस्ट्रम न मिल पाय तो उसके स्थान पर निम्न को दो हिस्सों में बाँटकर पिला दें-Colostrum का Substitute–एक ताजा अण्डा + 852 मिली. दूध + 284 मिली. पानी + एक चम्मच कॉड लीवर आयल + 1 चम्मच कास्टर आयल + 0.05 ग्राम स्ट्रेप्टोमाइसिन।

गोवृन्द (herd) का भविष्य मुख्य रूप से नवजात बच्चों के पालन-पोषण के समय ही देखभाल और सुप्रबन्ध पर निर्भर करता है। अत: नवजात शिशु की देखभाल बच्चा पैदा होने के समय से ही करनी चाहिए यह देखरेख निम्न प्रकार से की जाती है-

(i) साँस की जाँच करना (Check on respiration)–बच्चा जैसे जमीन पर आता है, ऑक्सीजन ग्रहण करके साँस लेने लगता है जबकि बच्चे को बच्चेदानी में ऑक्सीजन गाय के रक्त से प्राप्त होती है जैसे ही जन्म लेता है गाय उसे चाटना प्रारम्भ कर देती है। इसके पहले ग्वाले को चाहिए कि बच्चे के नथुने को अँगुलियों द्वारा साफ कर दे। इसके बाद भी वह अच्छी तरह साँस न ले तो बच्चे के सीने को हाथों से थपथपाना चाहिए या फेंफड़ों में नथुनों से होकर हवा भरनी चाहिए।

(ii) नाल का उपचार (Treatment of navel)–छोटे बच्चों में उनके नाल के द्वारा छूत की बीमारियाँ फैलने का डर रहता है। अत: उनके बचाव हेतु निम्नलिखित उपचार करना चाहिए-

(1) बच्चे के नाल को आधार से 2 मिमी. नीचे की ओर एक साफ धागे द्वारा बाँध देते हैं और शेष भाग (बचा हुआ साफ तथा जीवाणु रहित कैंची द्वारा काट देना चाहिए।

(2) उत्पन्न बच्चे के नाल (navel) को अंगूठे व एक उँगली की सहायता से आधार से नीचे की ओर 2-3 बार दबाने से उसके अन्दर का पानी आदि बाहर निकल जाता है।

(3) नाल को काटने के तुरन्त बाद टिंचर आयोडीन को कटे हुए भाग पर लगाना चाहिए जब तक घाव सूख न जाय।

(iii) पोषण (Feeding)—नवजात स्वस्थ शिशु अपने पैरों पर 15 मिनट बाद खड़े होने की कोशिश करने लगता है और बार-बार खड़ा होकर थन पकड़ने लगता है। अधिक दुधारू पशुओ के थन (teats) बहुत बड़े हो जाते हैं और बच्चा उन्हें नहीं दबा पाता है। ऐसी दशा में दूध हाथ की सहायता से बच्चे के मुँह में निचोड़ देना चाहिए तो बच्चा धीरे-धीरे दूध पीना सीख जायेगा। जो बच्चे खड़े होकर दूध पीने में (थनों से) असमर्थ रहते हैं ऐसे बच्चो को बोतल में भरकर दूध पिलाना चाहिए। यह क्रिया जब तक करनी चाहिए जब तक ये स्वयं खड़े होकर थनों से दूध न पीने लगें।

प्रारम्भ में जिस दूध को बच्चा पीता है उसे गाय की खीस (Colostrum) कहते हैं। खीस साधारण दूध से भिन्न होता है अर्थात् इनमें विटामिन A और D अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इनके अलावा प्रोटीन, खनिज पदार्थ एवं लोहा भी उपस्थित रहते हैं। खीस में लोहा दूध से 23 गुना अधिक होता है जो खून (blood) द्वारा दी गई ऑक्सीजन (O) का वितरण करने में सहायक होता है। खीस में एक विशेष गुण पाया जाता है जिसे एण्टीबोडीज करेक्टर (Antibodies character) कहते हैं। इसके अलावा बच्चे को सभी आवश्यक तत्व तथा लाभदायक कीटाणु आदि प्राप्त होते हैं।

खीस के गुण (Properties of colostrum)

(1) यह आँतों को साफ रखता है अर्थात् रुके हुए माल को बाहर निकाल देता है क्योंकि यह हल्का दस्तावर (mild laxative) होता है।
(2) विटामिन A, D, खनिज लवण तथा प्रोटीन और लोहा आदि सभी आवश्यक तत्व पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। इससे आँखों के रोग नहीं होते हैं।
(3) बछड़ों में फुर्तीलापन आ जाता है।
(4) एण्टीबोडीज (antibodies) गुण पाये जाने के कारण बीमारियों के जीवाणुओं से रक्षा करता है।
(5) लोहा अधिक होने के कारण वृद्धि करने वाले पशु के रक्त में हीमोग्लोबिन का निर्माण होता है।

(iv) बच्चे को माँ से पृथक् करना (Weaning of calves)—गाय के ब्याने के दो-चार दिन बाद बच्चे को गाय के साथ दो-चार दिन तक ही रखा जाता है। जब तक गाय से खीस प्राप्त होता रहता है। इसके बाद बच्चे को अलग रखकर गाय के दूध को बाल्टी में लेकर पिलाना चाहिए। इस क्रिया का प्रयोग ज्यादातर उन देशों में किया जाता है, जहाँ पर शिक्षा बहुत आगे बढ़ गयी है जबकि भारतवर्ष में इस विधि से बच्चों का पालन केवल कुछ शासकीय फार्मो तक ही सीमित है।

लाभ (Advantages)

(1) यह वैज्ञानिक विधि है।
(2) बीमार गाय द्वारा बछड़े के रोगी हो जाने की सम्भावना नहीं रहती।
(3) गाय की दूध उत्पादन मात्रा का सही ज्ञान हो जाता है

(4) बछड़ा मर जाने के उपरान्त भी दूध बन्द नहीं करती।
(5) बछड़े के भोजन की मात्रा सन्तुलित रखी जा सकती है अर्थात् कम या अधिक भोजन मिलने की सम्भावना नहीं होती है।
(6) बच्चे के द्वारा गाय के थनों के कटने या रोग लगाने की सम्भावना नहीं होती है।
(7) बछड़ा गाय के थन नहीं चूस पाता है। अतः गाय से प्राप्त दूध स्वच्छ होता है।

हानियाँ (Disadvantages)

(1) इस विधि में बछड़े पालने के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है तथा खर्चा अधिक होता है।
(2) प्रारम्भ में बच्चों को दूध पिलाने में बड़ी कठिनाई होती है।
(3) बिना बछड़ा लगाये बहुत-सी गायें दूध नहीं छोड़ती (पांसुरती नहीं) हैं।
(4) यदि दूध पिलाने वाले बर्तनों की सफाई ढंग से नहीं की गई है तो बच्चे को रोग लग सकते हैं।

प्रश्न 31. गाय तथा भैंस के नवजात बच्चों की मृत्यु के प्रमुख कारण बतलाइए।
Explain the main reasons for the death of newborn babies of cow and buffalo.

उत्तर-

गाय तथा भैंस के नवजात बच्चों की मृत्यु के प्रमुख कारण

अधिकांश नवजात बच्चों की मृत्यु पाचन तंत्र की समस्याओं के कारण होती है तथा इससे कम श्वसन तंत्र की समस्याओं के कारण होती हैं। जन्म के बाद नवजात बच्चों की मृत्यु का प्रमुख कारण पशुपालक द्वारा बच्चे को कोलोस्ट्रम न पिलाना तथा नाभिनाल का पूरा ध्यान नहीं रखना। इसके अतिरिक्त पेट में कीड़ों के कारण भी अधिक संख्या में बच्चों की मृत्यु हो जाती है।

- कोलोस्ट्रम, दूध अथवा अन्य आहार आवश्यकता से अधिक नहीं खिलाएं, पिलाएं इससे भी दस्त हो सकते हैं। आहार के बर्तनों और आसपास में संपूर्ण स्वच्छता का ध्यान रखें। 3 से 5 दिन के पश्चात पानी भी उपलब्ध कराया जा सकता है। एक महीने बाद नर्म मुलायम हरा चारा एवं अन्य आहार भी साथ में दिया जा सकता है।
- 15 दिन की उम्र पर पेट के कीड़े मारने की औषधि अवश्य दें। पेट में कीड़ों के कारण दस्त भी होती है और बच्चे की सामान्य वृद्धि नहीं हो पाती है तथा अधिक संख्या में कीड़ों के कारण नवजात बच्चों की मृत्यु भी हो जाती है। क्रमि नाशक औषधि प्रथम बार 15 दिन पर तत्पश्चात प्रत्येक महीने कम से कम 6 माह तक अवश्य दें।

ई. कोलाई के संक्रमण से सेप्टीसीमिया होने पर एक-दो दिन का बच्चा मर जाता है। इस रोग को सफेद दस्त, काफ स्कार एवं कोलीबेसिलोसिस के नाम से भी जाना जाता है। यह नवजात पशुओं मे पाया जाने वाला जीवाणु जनित रोग है जिसमें नवजात पशु निढ़ाल होकर बैठ जाता है तथा तेज, पतले, उजले पीले रंग का दस्त होता है। यह रोग गाय, भैंस घोड़ों व सूअर के नवजात पशुओं में अधिक होता है। इस रोग के कारण अधिकांश बच्चों की मृत्यु हो जाती है। यह रोग प्राय: 1 से 20 दिन की उम्र के नवजात बच्चों में अधिक होता है।

- ई. कोलाई के कारण बदबूदार दस्त होती है जो कि पीली या सफेद हो सकती है जिसके कारण एक-दो दिन में बच्चे की हालत अत्यंत गंभीर हो जाती है।
- यदि बच्चा एक से अधिक दिन का हो तो यह रोग मुख्यता ई कोलाई के के. 99 नामक इसट्रेन द्वारा होता है। यदि बच्चा 7 से 14 दिन का हो तो यह रोग रोटावायरस से होता है। इसके अतिरिक्त इस उम्र में यह रोग जीवाणु एवं प्रोटोजोआ जैसे कोक्सीडिया, क्रिप्टोस्पोरीडियम द्वारा भी हो सकता है।
- नवजात पशु को जन्म के बाद खीस का न मिलना, विटामिन ए की कमी, आहार की कमी, तेज ठंड एवं रखरखाव में कमी आदि कारणों से भी हो सकता है।
- इस रोग के जीवाणु दूषित मिट्टी, पानी एवं चारे आदि से आहारनली के द्वारा शरीर में प्रवेश करते हैं। इसके अतिरिक्त गर्भपात हुए भ्रूण, जननांगों से स्रावित पदार्थ आदि से भी यह रोग हो सकता है। जीवाणु आहार नाल में पहुंचकर अपने विषाक्त पदार्थों से पशु की आहार नाल एवं अंगों की मांसपेशियों को नुकसान पहुंचाते हैं और यह आंतों में सूजन भी उत्पन्न करते हैं।
- इस रोग के लक्षणों में बछड़े का शरीर ठंडा हो जाता है। बच्चा निढाल सी अवस्था में रहता है। बच्चे दूध पीना बंद कर देते हैं और सुस्त रहते है। सफेद पीले रंग का दस्त होता है। बार बार दस्त होने से बच्चे की पूंछ व पिछले पैर गोबर में लिपटे रहते हैं। बार बार दस्त से पेट दर्द होता है और कमर मुड़ जाती है। यदि समय पर उपचार न हो तो 3 से 8 दिनों में बच्चों की मृत्यु हो जाती है।
- रोग की पहचान लक्षण व गोबर की जांच के आधार पर की जाती है।

उपचार एवं रोकथाम हेतु पशु चिकित्सक से संपर्क करें। बछड़े को पहले दिन कोई आहार ना दें केवल मां का दूध थनों से पिए तो पीने दे। गाय भैंस के ब्याने के स्थान पर सफाई रखें। बहुत सारे बच्चे एक जगह ना रखें। इस बात का विशेष ध्यान रखें कि बच्चा कम से कम 5 दिन तक खींस अवश्य पिएँ। रोगी बछड़े के गोबर से आसपास का चारा दूषित होने से बचाएं। रोग ग्रसित बच्चे को अन्य बच्चों से अलग रखें।

- ऐसी स्थिति में मां का दूध नहीं पीने दे तथा पशु चिकित्सक की सलाह पर फ्लूइड थेरेपी एवं प्रतिजैविक औषधियाँ दें।

- बछड़े को खांसी जुकाम न्यूमोनिया दस्त बुखार आदि होने पर योग्य पशुचिकित्सक से तत्काल उपचार कराएं। थोड़ी सी भी लापरवाही से बच्चे की जान भी जा सकती है।
- 3 दिन के पश्चात दिन में 4 बार अलग से दूध पिलाएं। 2 सप्ताह के पश्चात पूर्ण दूध की मात्रा कम करके उस के स्थान पर सप्रेटा दूध पिलाएं। यह मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाते जाएं।
- नवजात बच्चों में नाभि नाल का पकना, डिप्थीरिया, उजला दस्त तथा अफरा होने की संभावनाएं रहती हैं इसलिए इससे बचाव की सावधानियां अवश्य रखें।

प्रश्न 32. नवजात बछड़ियों की मृत्यु दर को कम करने के लिए प्रबंधन रणनीतियाँ बतलाइए।

Explain the management strategy to reduce the mortality rate of New-born calf.

उत्तर- नवजात बछड़ियों को स्वस्थ रखने तथा उनकी मृत्यु दर कम करने के लिए हमें निम्नलिखित तरीके अपनाने चाहिए-

(1) गाय अथवा भैंस के ब्याने के तुरन्त बाद बच्चे के नाक व मुंह से श्लेष्मा व झिल्ली को साफ कर देना चाहिए ताकि उसकी साँस लेने की क्रिया में रुकावट पैदा न हो। इसके अतिरिक्त माँ को उसे चाटने देना चाहिए जिससे बच्चे के शरीर में रक्त का संचार सुचारु रूप से हो सके।

(2) बच्चे की नाभि को ऊपर से 1/2 इंच छोड़कर किसी साफ कैंची से काट देना चाहिए तथा उस पर टिंचर आयोडीन लगानी चाहिए।

(3) जन्म के 2 घंटे के अंदर बच्चे को माँ का पहला दूध (खींस) अवश्य पिलाना चाहिए। खीस एक प्रकार का गाढ़ा दूध होता है जिसमें साधारण दूध की अपेक्षा विटामिन्स, खनिज तथा प्रोटीन्स की मात्रा अधिक होती है। इसमें रोग निरोधक पदार्थ जिन्हें एन्टीबॉडीज कहते हैं भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। एन्टीबॉडीज नवजात बच्चे को रोग ग्रस्त होने से बचाती हैं। खीस में दस्तावर गुण भी होते हैं जिससे नवजात बच्चे की आंतों में जन्म से पहले का जमा मल (म्युकोनियम) बाहर निकल जाता है तथा उसका पेट साफ हो जाता है। खींस को बच्चे के पैदा होने के 4-5 दिन तक नियमित अन्तराल पर अपने शरीर के वजन के दसवें भाग के बराबर पिलानी चाहिए। अधिक मात्रा में खींस पिलाने से बच्चे को दस्त लग सकते हैं।

यदि किसी कारणवश (जैसे माँ की अकस्मात् मृत्यु अथवा माँ का अचानक बीमार पड़ जाना आदि) खीस उपलब्ध न हो तो किसी और पशु की खीस को प्रयोग किया जा सकता है। और यदि कहीं और भी यह उपलब्ध न हो तो नवजात बच्चे को निम्न लिखित मिश्रण दिन में 3-4 बार दिया जा सकता है। 300 मि.ली. पानी को उबाल कर ठंडा कर के उसमें एक अंडा फेंट लें। इस में 600 मि.ली. साधारण दूध व आधा चम्मच अंडी का तेल मिलायें। फिर इस मिश्रण में एक चम्मच फिश लिवर ओयल तथा 80 मि. ग्रा.

औरियोमायसीन पाउडर मिलाये। इस मिश्रण को देने से बच्चे को कुछ लाभ हो सकता है लेकिन फिर भी यह प्राकृतिक खीस की तुलना नहीं कर सकता।

क्योकि प्राकृतिक खीस में पायी जाने वाली एंटीबॉडीज नवजात बच्चे को रोग से लड़ने की क्षमता प्रदान करती हैं। खीस पीने के दो घंटे के अंदर बच्चा म्युकोनियम (पहला मल) निकाल देता है लेकिन ऐसा न होने पर बच्चे को एक चम्मच सोडियम बाई कार्बोनेट को एक लीटर गुनगुने पानी में घोल कर एनीमा दिया जा सकता है।

(4) कई बार नवजात बच्चे में जन्म से ही मल द्वार नहीं होता इसे एढेसिया एनाई कहते हैं। यह एक जन्म जात बीमारी है तथा इसके कारण बच्चा मल विसर्जन नहीं कर सकता और वह बाद में मृत्यु का शिकार हो जाता है। इस बीमारी को एक छोटी सी शल्य क्रिया द्वारा ठीक किया जा सकता है।

मल द्वार के स्थान पर एक + के आकार का चीरा दिया जाता है तथा शल्य क्रिया द्वारा मल द्वार बना कर उसको मलाशय (रेक्टम) से जोड़ दिया जाता है जिससे बच्चा मल विसर्जन करने लगता है। यह कार्य पशु पालक को स्वयं न करके नजदीकी पशु चिकित्सालय में कराना चाहिए क्योंकि कई बार इसमें जटिलतायें पैदा हो जाती हैं।

कभी कभी बच्छियों में जन्म से ही चार थनों के अलावा अतिरिक्त संख्या में थन पाए जाते हैं। अतिरिक्त थनों को जन्म के कुछ दिन बाद जीवाणु रहित की हुई कैंची से काट कर निकाल देना चाहिए। इस क्रिया में सामान्यत: खून नहीं निकलता। अतिरिक्त थनों को न काटने से बच्छी के गाय बनने पर उससे दूध निकालते समय कठिनाई होती है।

(6) यदि पशु पालक बच्चे को माँ से अलग रखकर पालने की पद्धति को अपनाना चाहता है तो उसे बच्चे को शुरू से ही बर्तन में दूध पीना सिखाना चाहिए तथा उसे माँ से जन्म से ही अलग कर देना चाहिए। इस पद्धति में बहुत सफाई तथा सावधानियों की आवश्यकता होती हैं जिनके बिना बच्चों में अनेक बीमारियों के होने की संभावना बढ़ जाती है।

(7) नवजात बच्चों को बड़े पशुओं से अलग एक बाड़े में रखना चाहिए ताकि उन्हें चोट लगने का खतरा न रहे। इसके अतिरिक्त उनका सर्दी व गर्मी से भी पूरा बचाव रखना आवश्यक है।

प्रश्न 33. डेयरी पशुओ के जीवन स्तर की देखभाल और प्रबंधन को समझाइये।
Explain the care and management of living conditions of dairy animals.

उत्तर- निम्नलिखित प्रबंधन सिद्धांतों को देखा जाना चाहिए:

- व्याने के तुरंत बाद और पहले कुछ दिनों के लिए सुपाच्य आहार और गुनगुना दलिया खिलाया जाना चाहिए। इस समय पशु को अलग से प्रबंधित किया जाना चाहिए। थनों को खाली करने के बारे में विशेष ध्यान रखा जा सकता है क्योंकि लगातार खाली करने से विशेष रूप से उच्च उपज वाले जानवरों में दूध के बुखार की घटना हो सकती है।
- प्रारंभिक प्रसवोत्तर के दौरान दूध पिलाने के प्रबंधन मे उच्चतम दूध उत्पादन

और बेहतर दृढ़ता प्राप्त करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। यह उच्च ऊर्जा आहार के साथ शुष्क पदार्थ के सेवन को अधिकतम करके प्राप्त किया जा सकता है।

- स्तनपान के शुरुआती चरणों के दौरान नियमित रूप से शरीर के वजन और स्थिति की निगरानी करें। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि इस चरण के दौरान पशु अत्यधिक स्थिति (बॉडी कंडीशन) नहीं खोता है क्योंकि इससे लीवर में वसा का जमाव हो सकता है जिसे 'फैटी सिंड्रोम' भी कहा जाता है।
- पशु को सकारात्मक ऊर्जा संतुलन में लौटने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि नकारात्मक ऊर्जा संतुलन के लंबे चरण के परिणामस्वरूप दूध उत्पादन की खराब स्थिति और प्रजनन क्षमता कम होती है।
- पीक मिल्क उत्पादन हासिल करने के बाद दूध का उत्पादन दूध के स्तर के आधार पर होना चाहिए।
- दूध सबसे अधिक सस्ते (इकोनोमिक) रूप में चारे से उत्पन्न होता है। इसलिए हर साल हरे चारे की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए। जब भी आवश्यक हो और उत्पादन के स्तर के आधार पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए।
- लेग्यूमिनस और गैर-लेग्युमिनस फ़ोडर्स का एक संयोजन 400 किलो वजन वाली गाय के रखरखाव और उत्पादन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए सबसे अच्छा है और केवल 1 किलोग्राम के बांटे के साथ 8 लीटर दूध तक उपज देता है। गैर फलीदार चारा खिलाने के लिए अतिरिक्त आधा किलो बांटे की आवश्यकता होगी। उसी गाय को यदि सूखी घास खिलाया जाता है तो उसे क्रमशः 5 और 4.5 किग्रा के अनुपात में बांटे मात्रा की आवश्यकता होगी।
- अधिक मात्रा में दूध देने वाली डेयरी गायों (20 लीटर / दिन) के मामले में, बांटा और चारा (यहां तक कि उच्च बांट स्तर पर) का कोई उपयुक्त संयोजन शरीर के भंडार के जमाव के बिना उत्पादन के इस स्तर को बनाए नही रख सकता है। ऐसी गायों को 300 ग्राम प्रति दिन के स्तर पर तेल / वसा के साथ पूरक किया जा सकता है।
- दूध का मध्यम स्तर हरे और सूखे चारे के एक उपयुक्त संयोजन पर बनाए रखा जा सकता है, जो वांछित मात्रा में केंद्रित होता है। पुआल और हरे चारे के मिश्रण को खिलाते समय, यह वांछनीय होगा यदि 1 किलो भूसे को प्रत्येक 100 किलोग्राम शरीर के वजन के लिए 4-5 किलोग्राम हरे चारे के साथ मिश्रित किया जाए। यदि प्रचुर मात्रा में गुणवत्ता वाला हरा चारा उपलब्ध नहीं है और राशन निम्न गुणवत्ता के पुआल / स्टोव पर आधारित है, तो अतिरिक्त बांटे/कन्सन्ट्रेट फीड की आवश्यकता है।
- शुष्क पदार्थ के बराबर मध्यम उपज देने वाली दुधारू डेयरी गायों का चारा सेवन प्रति 100 किलोग्राम शरीर के वजन के बारे में 5 किलोग्राम शुष्क पदार्थ है। अधिक उपज देने वाले पशुओ में शुष्क पदार्थ का सेवन 3.5 प्रतिशत या इससे अधिक हो सकता है।

• चारे को काफ़ कर के (कुट्टी कर के) ही दिया जाना चाहिए। हालांकि, बहुत अधिक चॉपिंग से बचना चाहिए है क्योंकि यह जुगाली प्रक्रिया को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है।

• बांट के अनाज वाले हिस्से को हल्का दलिया रूप में पीस दिया जाना चाहिए अन्यथा इसका कुछ हिस्सा मल में प्रकट हो सकता है। बांट मिश्रण को नम करने और खिलाने से पहले भूसे के साथ मिश्रण करना वांछनीय है।

• दुधारू गायों को स्वच्छ पेयजल की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए।

• उन्नत गर्भवती गायों और भैंसों को खिलाने के लिए उचित देखभाल भी की जानी चाहिए क्योंकि इन महत्वपूर्ण चरणों में पोषण प्रबंधन परिपक्वता उम्र का निर्धारण करेगा और दुग्धकाल/लैक्टेशन के शुरुआती चरणों के दौरान उपयोग के लिए शरीर के

• भंडार का पर्याप्त निर्माण सुनिश्चित करेगा क्योंकि इस दौरान पशु सामान्यतया ऊर्जा आपूर्ति और दूध उत्पादन के स्तर के साथ तालमेल रखने में विफल रहता है।

• जई, मक्का, गेहूं / धान के पुआल और बांटा (उत्पादन के स्तर के आधार पर) के साथ बरसीम का एक उपयुक्त संयोजन सर्दियों के दौरान डेयरी गायों और भैंसों को खिलाने की सबसे व्यावहारिक रणनीति है। ऐसे राशन की कुल सूखी सामग्री लगभग 22 प्रतिशत होनी चाहिए और कच्चे प्रोटीन की मात्रा लगभग 14 प्रतिशत होनी चाहिए।

• यदि पर्याप्त हरा चारा उपलब्ध नहीं है और हमें पुआल पर निर्भर रहना है, तो हम विशेषज्ञ मार्गदर्शन में यूरिया के साथ इलाज करके भूसे की गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं।

• लेग्युमिनस घास या पुआल के साथ हरे रंग का रसीला चारा एक साथ प्रदान करें, जिससे कि पशुओं की खपत हो सके। प्रत्येक 2 से 5 लीटर दूध के लिए 1 किलो की दर से अतिरिक्त ध्यान देना चाहिए। अच्छी मिल्किंग बनाए रखने के लिए नमक और खनिज की खुराक दी जानी चाहिए।

• भोजन की नियमितता बनाए रखें।

प्रश्न 34. डेयरी फार्म रिकार्ड क्या है? इसका महत्व तथा उद्देश्य बतलाइए।
What is dairy farm record? Explain its importance and purpose.

अथवा (Or)

डेयरी फार्म रिकार्ड के रखरखाव के बारे में बतलाइए।
Explain about maintainance of dairy from records.

उत्तर- डेयरी फार्म रिकार्ड या पशुधन अभिलेखन

पशुपालक डेयरी फार्म पर पशुधन संबंधित सभी जानकारियों को समय-समय पर रजिस्टर में रिकॉर्ड करते रहते हैं इन्हें ही **पशुधन अभिलेखन या डेयरी फार्म रिकॉर्ड** कहा जाता है।

पशुधन अभिलेखन या डेयरी फार्म रिकॉर्ड बनाने से पशुओं के बारे में, दूध उत्पादन के बारे में, प्रजनन के बारे में आदि की जानकारी पशु पालकों के पास रहती है।

एक पशुपालक को डेरी फार्म पर रखे जाने वाले विभिन्न अभिलेखों से समय-समय पर दुग्ध-व्यवसाय से होने वाले लाभ हानि तथा अन्य विभिन्न जानकारियों जैसे- पशुओं का उत्पादन, पशुओं को दिये जाने वाले आहार की मात्रा, पशु वंशावली, पशु प्रजनन आदि के बारे में सही-सही ज्ञान हो जाता है।

डेरी फार्म अभिलेखों का विवरण (Dairy Farm Records Details)

एक आदर्श डेरी फार्म पर निम्नांकित मुख्य अभिलेख रखे जाते हैं-

- पशु स्टॉक रजिस्टर (Live Stock Register)
- दुग्ध उत्पादन रजिस्टर (Milk Produce Register)
- दुग्ध वितरण रजिस्टर (Milk Distribution Register)
- पशु गर्भित होने का रजिस्टर (Cattle Service Register)
- सांड सेवा रजिस्टर (Bull Service Register)
- पशु ब्याने का रजिस्टर (Animal Calving Register)
- ब्यांत उत्पादन रजिस्टर (Lactation Produce Register)
- पशु स्वास्थ्य रजिस्टर (Animal Health Register)
- बछड़ों का आहार रजिस्टर (Calf Feeding Register)
- पशु भार रजिस्टर (Cattle Weight Register)
- पशु आहार रजिस्टर (Cattle Feeding Register)
- उपस्थिति एवं वेतन रजिस्टर (Attendance and Pay Register)
- पशु वृत्तपत्र (Cattle History Sheet)
- पशु वंशावली रजिस्टर (Cattle Pedigree Sheet)
- आय एवं व्यय रजिस्टर (Income and Expenditure Register)

दुग्ध अभिलेखन के लाभ (Advantages of Milk Recording)

दुग्ध अभिलेखन से निम्नलिखित लाभ होते है-

1. दुधारू पशुओं का विशेष रूप से सांड का चयन—दुग्ध अभिलेखन करने से सांड तथा अन्य दुधारू पशुओं के चयन में अधिक सुविधा होती है। जिस सांड की संतान तथा माता ने सबसे ज्यादा दूध उत्पन्न किया हो वह सांड अन्य सांडों से अधिक स्वस्थ होता है।

2. सन्तति परीक्षण (Progeny Test)—दुग्ध अभिलेखन द्वारा सांड की अपनी सन्तति (progeny) में दुग्ध उत्पादन के गुण स्थानान्तरण (transfer) करने की क्षमता का भली-भांति अनुमान हो जाता है। यह अनुमान एक ही सांड से पैदा हुई कम से कम पाँच गायों के दुग्धोत्पादन अभिलेखन से सिद्ध हो जाता है। इसके साथ ही सांड की माँ का भी दुग्धोत्पादन अभिलेखन मिल जाये तो फिर सांड से उत्पन्न गायों के अभिलेखन से तुलना भी हो जाती है।

3. चयनात्मक प्रजनन (Selection Breeding)—दुग्ध अभिलेखन (milk

recording) अच्छी तथा चयनात्मक प्रजनन (selective breeding) में भी अधिक सहायक होता है। कुछ पशु ऐसे होते हैं जो थोड़ी ही अवधि में अधिक दूध दे देते हैं तथा अचानक उनके दूध उत्पादन की क्षमता कम हो जाती है। पशु पालक झूठा अनुमान लगा बैठता है यह पशु अच्छे दुग्ध उत्पादक हैं। परन्तु पूरे व्यांत में लगातार एक ही मात्रा में दूध देने वाले पशु हालांकि देखने में अच्छे नहीं लगते हैं परन्तु कुल दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से यह पशु पहले पशुओं से अधिक अच्छे होते हैं। ऐसे पशुओं का ठीक प्रकार से प्रजनन करके दुग्ध उत्पादन क्षमता को और अधिक बढ़ाया जा सकता है।

4. पशुओं को सन्तुलित आहार (Balanced Ration)—खिलाने में सहायता मिलती है। पशु के दूध उत्पादन के अनुसार रातव तथा चारे की मात्रा भी कम अथवा अधिक की जा सकती है। वैज्ञानिकों का मत है कि यदि दूध देने वाले पशुओं को स्वादिष्ट तथा नियमित आहार खिलाया जाय तो उनके दुग्धोत्पादन की क्षमता भी बढ़ जाती है। सन्तुलित आहार खिलाने से चारे की मात्रा को नष्ट होने से बचाया जा सकता है तथा खर्चों में भी कमी की जा सकती है। ऐसा अनुमान है कि दुग्धोत्पादन का 60 से 70 प्रतिशत खर्चा केवल चारों पर होता है।

5. अधिक चारा उत्पादन—दुग्ध उत्पादन के द्वारा पशुपालक को अच्छे एवं स्वादिष्ट हरे चारे उगाने का शौक पैदा हो जाता है, क्योंकि वह सोचता है कि अच्छे एवं अधिक हरे चारे खिलाने से पशु की दुग्धोत्पादन क्षमता बढ़ती है। फलस्वरूप उसे डेरी फार्म से अधिक अच्छे हरे चारे उगाने की प्रेरणा मिलती है।

6. पशुओं से सम्पर्क—दुग्ध अभिलेखन से दूध देने वाले पशुओं से पशुपालक का निकट का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, क्योंकि उसे प्रत्येक दूध देने वाले पशु के विषय मे अलग अलग सम्पर्क बनाये रखने का अवसर मिलता है। यदि किसी पशु ने कम दूध दिया है तो पशुपालक को शीघ्र ही पता चल जाता है कि अमुक पशु ने दूध कम क्यों दिया है। यदि यह कमी पशु के अस्वस्थ होने के कारण हुई है तो उसका तुरन्त इलाज करता है और अगर यह कमी पशु का ठीक चारा अथवा रातब न देने के कारण हुई है तो वह पशु के आहार की ओर अधिक ध्यान देता है।

7. पशु का उचित मूल्य—यदि पशु को बेचना है तो ऐसे पशु का अधिक मूल्य मिलता है जिसको दुग्धोत्पादन अभिलेखन रखा जाता है क्योंकि ग्राहक स्वयं पशु तथा उसकी माँ का अभिलेखन देखकर उचित मूल्य लगाता है। यदि पशु का दुग्धोत्पादन अभिलेखन (milk recording) नहीं है तो पशु के बाह्य गुण तथा शरीर देखकर ही उसे खरीद लिया जाता है, जिसके कारण कभी-कभी मनुष्य को धोखा भी हो जाता है।

8. वंशावली अनुरक्षण (Maintenance of pedigree)—डेरी के सभी पशुओं में वंशावली अनुरक्षण सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। दुग्ध अभिलेखन से पशु के माता-पिता, दादा-दादी तथा नाना-नानी सभी का दुग्धोत्पादन वंशावली में लिखा होता हैं। जिस पशु की वंशावली नहीं होती है उसे अज्ञात कुल (non-descript) पशु कहा जाता है। ऐसे पशु की कोई कीमत नही होती है तथा कोई पशु पालक उसे खरीदना नहीं चाहेगा।

9. व्यक्तिगत गर्व एवं लगन—डेरी फार्म पर प्रत्येक दूध देने वाले पशु का दुग्ध अभिलेखन रखने से पशुपालक को अपने पशुओं का समूह का पूरा-पूरा ज्ञान होता है तथा वह अपने झुण्ड (herd) पर गर्व अनुभव करता है। अच्छे दुग्धोत्पादन पशु रखने का शौक उसे लग जाता है, फलस्वरूप वह 'गोपाल रत्न' की पदवी लेने की ओर अग्रसर होने लगता है।

प्रश्न 35. पशु ऋतु चक्र या मद चक्र से क्या आशय है? ऋतुमयी गाय के लक्षण बतलाइए।

What is the meaning of Estrous Cycle? Describe the signs of cow in heat.

उत्तर-

पशु ऋतु चक्र या मद चक्र
(Estrous Cycle)

मादाओं में यौवनारम्भ (Puberty) से मोनोपाउज तक जनन चक्र चलता रहता है। शरीर क्रियात्मक क्रियाओं का संयोग जो एक बार पशु के हीट (Heat) में आने से अगली बार हीट (Heat) में आने तक के समय में होता है। इसे मद चक्र कहते हैं। "The combination of Physiological Events with take place staring with heat and ending with the next heat is termed as estrous cycle."

डेरी पशुओं में मद चक्र को चार भागों में बाँट सकते हैं-

(1) इस्ट्रस (Estrus)—वह समय जब मादा नर के साथ सम्भोग करने की इच्छा व्यक्त करती है। इस समय में अण्डोत्सर्जन (Ovulation) तथा नारंगकाय (Corpusluteum) का निर्माण होता है। यह सब कुछ घण्टों से एक दिन तक हो जाता है।

(2) मेटेस्टरस (Metestrus)—अण्डोत्सर्जन के तुरन्त बाद का समय जब (Estrogesn level luteinizing) हार्मोन का स्तर रक्त में कम हो जाता है तथा कोरपस लेटियम अपना कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। इसका समय हीट प्रारम्भ होने से 6 दिन तक का होता है।

(3) डीसट्रस (Diestrus)—यह वह अवस्था है जब कोरपस लेटियम द्वारा उत्पादित प्रोजेस्ट्रोन का स्तर रक्त में अधिक होता है। इस हारमोन के प्रभाव से ग्रेफियन फोलीकल्स (Graafian follicles) का अण्डाशय में निर्माण रुक जाता है। 6-18 दिन तक का समय डीसट्रस के अन्तर्गत आता है।

(4) प्रोस्ट्रस (Proestrus)—गर्भाधान न होने पर हीट (Heat) शुरू होने के 17-18 दिन बाद कोरपस लेटियम (नारंगकाय) गायब हो जाता है। प्रोजेस्टरोन का स्तर कम होकर ईस्टरोजिन का स्तर बढ़ता है और ग्रेफियन फॉलीकल का तेजी से विकास होता है। इस्ट्रडियल हार्मोन जो-फोलीकुलर फ्लूड में पाया जाता है। ओवीडक्ट (Oviduct) में सीलिया की संख्या व उसकी क्रियाशीलता बढ़ाता है। पशु के गर्मी (Heat) में आने के कुछ लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

ऋतुमयी गाय के लक्षण (Signs of Cow in Heat)

भली प्रकार देखभाल करने और खिलाई-पिलाई करने पर गाय बच्चा देने (Calving) के लगभग 60-90 दिन में ऋतुमयी हो जाती है (comes into heat)। गाय के ऋतुमयी या मदकाल के लक्षण प्रकट होते ही उसे साँड़ के पास भेजने का प्रबन्ध करना चाहिये। दो व्यक्ति के बीच जितना कम समय लगेगा दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से गाय उतनी अच्छी होगी।

गाय प्रति 19-21वें दिन गर्मी में आती है। वह 18-36 घण्टे तक गर्म रहती है और साँड़ मिलाने का सर्वोत्तम समय गर्मी के आने के मध्याह्न (mid heat) से लेकर गर्मी समाप्त होने तक (end of heat) है। गाय में गर्भावधि का औसत समय (generation period) 284 दिन है।

नीचे लिखे लक्षणों के प्रकट होने पर समझना चाहिये कि गाय ऋतुमयी है और उसे साँड़ से संसर्ग कराने की आवश्यकता है-

(1) पशु बेचैन रहता है तथा खूंटे के चारों ओर चक्कर लगाता रहता है।
(2) पशु बार-बार पेशाव करता है।
(3) साँड़ को देखते ही पशु चुपचाप खड़ा हो जाता है।
(4) पशु बार-बार आवाज करता है, लेकिन कुछ आवाज नहीं करते हैं।
(5) वह दूध कम देने लगती है।
(6) मदकाल के समय पशु बार-बार पूँछ हिलाता है तथा जल्दी-जल्दी उठता बैठता है।
(7) वह दूसरे पशु पर चढ़ने का प्रयास करता है।
(8) उसकी योनि से गाढ़ा पीला-सा पदार्थ लगता है।

कुछ गायें शर्मीली होती हैं और बाह्य रूप से ऋतुमयी होने के चिह्न प्रकट नहीं करती। इन गायों के ऋतुमयी के निम्न लक्षण हैं-

(1) गाय के योनिद्वार में सूजन आ जाती है और कुछ फूला-सा प्रतीत होता है।
(2) योनिद्वार लाल रंग का होता है।
(3) यदि गाय की योनि यन्त्र के द्वारा खोली जाये तो गर्भाशय का द्वार खुला दिखाई पड़ता।
(4) योनि में सफेद रंग का लसदार पदार्थ बहता दिखाई पड़ता है। इस द्रव पदार्थ को श्लेष्मल है (Mucous) कहते है।

प्रश्न 36. वीर्य का संग्रह, संचालन, संरक्षण भंडारण तथा गर्भाधान पर टिप्पणी लिखिए।
Write the note on collection, operation, preservation, storage and conception of semen.

अथवा (Or)

कृत्रिम गर्भाधान की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
Describe the Artificial Insemination Technique.

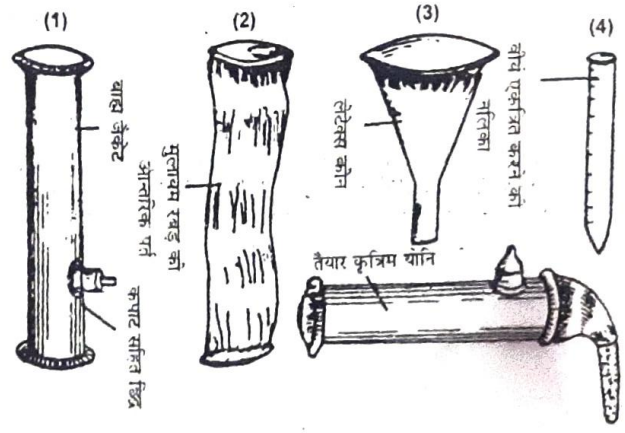
उत्तर-

कृत्रिम गर्भाधान की प्रक्रिया
(Artificial Insemination Technique)

कृत्रिम गर्भाधान के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है-

(1) वीर्य एकत्रीकरण (Collection of Semen)।
(2) वीर्य परीक्षण एवं उनका मूल्यांकन (Examination and Evaluation of Semen)।
(3) वीर्य तनुकारक एवं उसका उपयोग (Semen dilutors and their use)।
(4) वीर्य संरक्षण एवं उसका परिवहन (Storage and Transport of Semen)।
(5) गाय को गर्भित करना (Insemination of the Cow)।

उपर्युक्त सभी प्रक्रियाएँ कृत्रिम गर्भाधान के अन्तर्गत आती है तथा उनका अध्ययन अग्र प्रकार किया जाता है-



चित्र–कृत्रिम योनि के भाग

1. वीर्य एकत्रीकरण (Collection of Semen)

बहुत समय पहले से ही पशुओं से वीर्य एकत्रित करने की विभिन्न विधि प्रचलित हैं, लेकिन जो पुरानी विधियाँ थीं उनमें काफी दोष होने के कारण उनको समाप्त कर दिया गया तथा समय-समय पर नई विधियों का विकास हुआ जिनमें पुरानी विधियों के दोषों को ध्यान में रखा गया तथा नई विधियों को सुविधाजनक बनाया गया। आजकल नई विधियाँ जो कि सुविधा की दृष्टि से सही व दोषरहित हैं, अपनाया जाने लगा है। आजकल सभी स्थानों पर कृत्रिम योनि विधि को ही अपनाया जाता है।

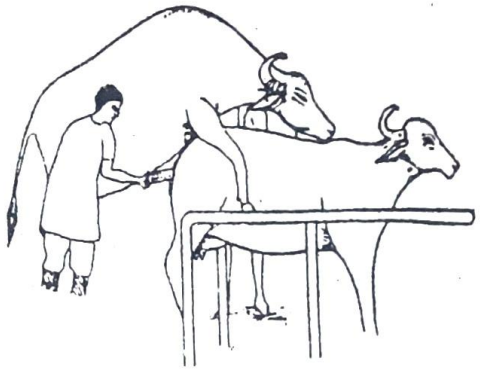
कृत्रिम योनि विधि (Artificial Vagina Method)–आजकल के युग में वीर्य संग्रह करने की यह विधि सर्वोत्तम सिद्ध हुई है। इस विधि में विभिन्न प्रकार की कृत्रिम योनि उपलब्ध की जाती है जिसके कारण यह विधि सभी पशुओं के वीर्य संग्रह के लिए सबसे अधिक प्रचलित है।

कृत्रिम योनि को प्राकृतिक योनि के सिद्धान्त पर बनाया गया है जिसके कारण साँड़ को प्राकृतिक योनि का अनुभव प्राप्त होता है।

पशुओं मे प्रयोग होने वाली कृत्रिम योनि को निम्नलिखित चार भागों में बाँट सकते हैं-

(i) बाह्य मोटी रबर का सिलेण्डर (Outer heavy rubber cylinder),
(ii) भीतरी लैटेक्स लाइनर (Inner latex or inner sleeve),
(iii) जैटेक्सकोन (Semen receiving cone),
(iv) वीर्य एकत्र करने वाली नलिका (Semen collecting vial)।

कृत्रिम योनि को तैयार करना (Preparation of A. V.)—वीर्य एकत्रित करने से पहले योनि के सभी भागों को जीवाणु रहित कर लेना चाहिए। इसके बाद काँच की छड़ की सहायता से भीतरी लैटेक्स लाइनर को बाह्य सिलेण्डर के अन्दर डाल दिया जाता है और इसके दोनों सिरों को उलट दिया जाता है जिसके फलस्वरूप दोनों के बीच में जगह खाली रह जाती है। इस खाली स्थान में 105 से 115°F वाला पानी भर दिया जाता है। इसके बाद कोन के पतले सिरे पर वीर्य एकत्र करने वाली नलिका को लगा दिया जाता है तथा इसके चौड़े सिर पर बाह्य सिलेण्डर के ऊपर उस ओर को लगाते हैं जिस सिरे के पास नोजिल होता है। वीर्य एकत्रित करने से पहले कृत्रिम योनि का तापक्रम देख लेना बहुत आवश्यक है क्योंकि अधिक तापमान होने से शिश्न (Penis) में कोई आघात हो सकता है तथा तापक्रम कम होने पर साँड़ सम्पूर्ण वीर्य को श्रृंखलित नहीं कर सकेगा बल्कि मूत्र मिलने का भय रहता है।



चित्र-कृत्रिम योनि विधि से वीर्य संग्रह करना

कृत्रिम योनि से वीर्य एकत्रित करना—वीर्य एकत्रित करने के लिए उस गाय का प्रयोग करते हैं जो ऋतुमयी (Cow in heat) होती है। यदि गाय नहीं होती है तो पुतले का प्रयोग करते हैं। गाय को खड़ा करके योनि को लेकर के बायीं या दाँयी तरफ खड़े हो जाते हैं और योनि को 45 अंश का कोण बनाते हुए पकड़ते हैं। जब साँड़ गाय पर चढ़ता है तो शीघ्रता से हाथ से शिश्न को पकड़कर कृत्रिम योनि में डाल देते हैं, ध्यान रहे कि शिश्न को हाथ द्वारा खुले स्थान पर न पकड़ें बल्कि त्वचा को पकड़ें। साँड़ को कृत्रिम योनि में

प्राकृतिक योनि का अनुभव होता है और वीर्य उसमें छोड़ देता है। जब साँड़ नीचे उतरता है तो कृत्रिम योनि को सीधा कर देना चाहिए और इसमें से हवा तथा पानी निकाल देना चाहिए। ऐसा करने से सम्पूर्ण वीर्य vial में आता है। अब इस वीर्य को प्रयोगशाला में ले जाकर परीक्षा की जाती है और इसको सूर्य की सीधी किरणों से बचाना चाहिए।

वीर्य एकत्र हो जाने के बाद कृत्रिम योनि के सभी भागों को पृथक्-पृथक् करके जीवाणु रहित कर देते हैं।

कृत्रिम योनि द्वारा वीर्य संग्रह में सावधानी

(1) नीचे का फर्श ऐसा होना चाहिए जिस पर गाय को फिसलने का भय न हो।
(2) गाय तथा साँड़ को वीर्य एकत्र करने से पहले पूर्ण रूप से साफ कर देना चाहिए।
(3) वीर्य संग्रह सदैव क्रेट में होना चाहिए।
(4) साँड़ को गाय पर दो-तीन बार चढ़ने नहीं देना चाहिए।
(5) पहली बार का वीर्य न लेकर दूसरी बार का वीर्य लेना चाहिए जो कि सर्वोत्तम होता है।
(6) साँड़ को परेशान नहीं करना चाहिए।
(7) कृत्रिम योनि का तापक्रम प्राकृतिक योनि के बराबर ही होना चाहिए।

कृत्रिम योनि विधि से लाभ

(1) इस विधि में वीर्य शुद्ध एवं पूर्ण मात्रा में प्राप्त होता है।
(2) इस विधि से रोग फैलने का भय नहीं रहता।
(3) इस विधि में अगर गाय का पुतला (Dummy) प्रयोग करते हैं तो अन्य गायों की आवश्यकता नहीं होती।
(4) इस विधि से प्राप्त वीर्य में शुक्राणु (Sperms) अधिक जीवित पाये जाते हैं।

कृत्रिम योनि विधि से हानियाँ

(1) इस विधि में कभी-कभी साँड़ वीर्य देने में परेशान करता है।
(2) यह विधि अधिक मूल्यवान है।
(3) इस विधि में तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है।

2. वीर्य परीक्षण एवं मूल्यांकन (Examination and Evaluation of Semen)

साँड़ का वीर्य लेने के बाद उसका परीक्षण करना अति अनिवार्य है जिससे वीर्य के गुणों का अध्ययन किया जा सकता है।

वीर्य का मूल्यांकन एवं परीक्षण करने के लिए अग्रलिखित प्रकार के परीक्षण किये जाते हैं-

(1) खाली आँख परीक्षण (Macroscopic Examination)—इस परीक्षण में सूक्ष्मदर्शी से बिना देखे केवल आँख से देखकर उनके गुण व दोष का अनुमान लगाया जा

सकता है। इस परीक्षण में आँख द्वारा निम्नलिखित परीक्षण करते है-

(A) आयतन (Volume),

(B) रंग परीक्षा (Colour Examination),

(C) वीर्य का गाढ़ापन (Consistency of Semen)।

इन परीक्षणों से हम वीर्य की शुद्धता की जाँच कर लेते हैं; जैसे-एक साँड़ से अधिक से अधिक आयतन यह प्रतीत करता है कि वह वीर्य अच्छा होगा और साँड़ का वीर्य रंग हल्के क्रीम जैसा सर्वोत्तम होता है। वीर्य का गढ़ापन होना इस बात को प्रकट करता है कि उसमें अधिक संख्या में शुक्राणु उपस्थित हैं।

(2) सूक्ष्मदर्शी परीक्षण (Microscopic Examination)—वीर्य परीक्षण मूल्यांकन का यह सबसे सर्वोत्तम तरीका है। इसके अन्तर्गत हम निम्नलिखित परीक्षण करते हैं-

(A) शुक्राणु की गतिविधि (Mobility of sperm),

(B) असमान्यताओं की गणना (Abnormality count),

(C) मृतक एवं जीवित शुक्राणु गणना (Dead and live sperm count),

(D) शुक्राणुओं की कुल संख्या ज्ञात करना (Total count of the sperms)।

इस विधि में एक स्लाइड वीर्य की बनाकर सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखते हैं और उपरोक्त सभी परीक्षण करते हैं।

(3) रासायनिक परीक्षण (Chemical Examination)—इसमें रासायनिक पदार्थों का प्रयोग करते हैं तथा इन पदार्थो की सहायता से उपस्थित शुक्राणुओं की उपापचयक क्रियाएँ ज्ञात करके मूल्यांकन किया जाता है। इसमें किये जाने वाले मुख्य-मुख्य परीक्षण निम्नलिखित हैं-

(A) एम. बी. आर. परीक्षण,

(B) पी. एच. परीक्षण,

(C) बी. बी. सी. परीक्षण।

(4) जीवाणु परीक्षण (Bacteriological Examination)—प्राय: यह विधि कम प्रयोग में लायी जाती है, लेकिन उपरोक्त सभी परीक्षण करने के बाद थोड़ा-सा भी सन्देह हो तो इस परीक्षण को करना अनिवार्य होता है।

इस परीक्षण में हानिकारक जीवाणुओं का वीर्य में होने का परीक्षण करते हैं। अगर हानिकारक जीवाणु पाये जाते हैं तो उस वीर्य का प्रयोग नहीं करते हैं क्योंकि ये रोग फैलाते हैं।

3. वीर्य तनुकारक एवं उनका उपयोग (Semen Dilutors and their Use)

परिभाषा—वीर्य तनुकारक वे तरल पदार्थ हैं जो वीर्य का आयतन बढ़ाने एवं उसे अधिक समय तक सुरक्षित बनाये रखने में शक्ति प्रदान करते हैं।

उद्देश्य—

(1) वीर्य के आयतन को बढ़ाकर अधिक संख्या में गाय गर्भित की जा सकती है।

(2) इनका प्रयोग वीर्य के पी. एच. को घटने-बढ़ने से रोकने में प्रयोग किया जाता है।

(3) वीर्य में उपस्थित शुक्राणुओं को अधिक समय तक जीवित बनाये रखने के लिए भी वीर्य तनुकारकों का प्रयोग किया जाता है।

(4) वीर्य में उपस्थित शुक्राणुओं को वातावरण से अचानक परिवर्तन होने वाली हानि से बचाने मे वीर्य तनुकारकों का प्रयोग करते हैं।

वीर्य तनुकारकों के गुण (Characteristies of a good Diluter)—वीर्य तनुकारकों के अन्दर निम्नलिखित गुणों का समावेश होना चाहिए-

(1) तनुकारक विषैला नहीं होना चाहिए तथा जो वीर्य के अन्दर विषैले पदार्थ को बनने से भी रोकता हो। (2) प्रयोग होने वाले तनुकारकों का पी. एच. के बराबर होना चाहिए अर्थात् परिवर्तनशील न हो तथा शुक्राणु के अनुकूल हो। (4) वीर्य तनुकारक के रूप में उन्हीं पदार्थों को प्रयोग में लाना चाहिए जो शुक्राणु को वातावरण के प्रभाव से बचाते हों। (5) ये पदार्थ काफी सस्ते, आसानी से बाजार में प्राप्त होने वाले व संगठन में सरल होने चाहिए। (6) शुद्ध वीर्य में मिलाने पर शुक्राणुओं के लिए हानिकारक नहीं होना चाहिए जिनका कि प्रयोग शुक्राणु अपने भोजन में कर सकें। (7) तनुकारकों में शुक्राणुओं की दक्षता (गर्भधारण शक्ति) को बनाये रखने की शक्ति होनी चाहिए। (8) ये शीघ्र नष्ट होने वाले नहीं होने चाहिए।

तनुकारकों के प्रकार—हमारे देश के अन्दर प्रमुख प्रचलित वीर्य तनुकारक निम्नलिखित हैं-

(1) अण्डपीत फॉस्फेट (Egg yolk phosphate), (2) अण्डपीत साइट्रेट (Egg yolk citrate), (3) अण्डपीत ग्लाइसीन (Egg yolk glycine), (4) दुग्ध तनुकारक (Milk dilutor), (5) रक्त तनुकारक (Blood dilutor)।

फॉस्फेट, साइट्रेट, ग्लाइसी पदार्थों को अण्डे के साथ निश्चित अनुपात में मिलाकर उपरोक्त तीनों तनुकारक बनाये जाते हैं।

वीर्य को पतला करने की दर—वीर्य को पतला करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि वीर्य में उपस्थित शुक्राणुओं की मात्रा निश्चित रहे अर्थात् वीर्य की गर्भधारण क्षमता क्षीण न हो जाये। भारत में वीर्य को पतला करने की दर नौ साँड़ के लिए 1: 10 के अनुपात में प्रचलित है।

पश्चिम देशों में प्राय: वीर्य 1: 100 तक पतला किया हुआ प्रयोग किया जाता है। कुछ देशों में 1 : 400 तक वीर्य पतला करके प्रयोग किया जा चुका है। भारत में केवल प्रयोगात्मक रूप में 1: 20 तक पतला किया वीर्य प्रयोग किया गया है।

4. वीर्य संग्रह एवं परिवहन (Storage and Transport of the Semen)

वीर्य को सुरक्षित रखना अति आवश्यक होता है क्योंकि साँड़ से प्राप्त वीर्य की सब मात्रा एक साथ प्रयोग नहीं की जा सकती है। वीर्य को सुरक्षित रखने पर वीर्य को समयानुसार

प्रयोग में लाया जा सकता है। अगर वीर्य को सुरक्षित नहीं रखा जाये तो वीर्य के अन्दर उपस्थित शुक्राणु नष्ट हो जाते है।

वीर्य को सुरक्षित निम्नलिखित क्रियाओं द्वारा रखा जा सकता है-

(1) उपापचय क्रियाओं पर प्रतिबन्ध (Control on metabolic activity)–उपापचय क्रिया के अन्तर्गत अनेक विषैले पदार्थ वीर्य के अन्दर उपस्थित हो जाते हैं। इसलिए वीर्य के अन्दर शुक्राणु नष्ट हो जाते हैं। अत: उपापचय की क्रिया को निम्नलिखित विधियों द्वारा रोका जा सकता है।

(A) शीत द्वारा (By Cold),

(B) अक्रियाशील गैस द्वारा (By Inactive Gas),

(C) रासायनिक पदार्थों द्वारा (By Chemicals)।

(2) पोषक तत्व प्रदान करना (To Provide Nutrition)–इस विधि के अन्तर्गत वीर्य में उपस्थित शुक्राणुओं के लिए भोजन के रूप में पोषक तत्वों (तनुकारक) का प्रयोग करते है।

(3) शक्ति प्रहार से रक्षा करना (Protection from cold shock)–वातावरण में अचानक परिवर्तन आने के कारण शुक्राणुओं पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अत: इससे बचाव के लिए वीर्य को 20 मिनट 90°F तापक्रम पर रखना चाहिए। वीर्य में फॉस्फोलिपाइड जो दूध और अण्डपीत से प्राप्त हो जाते हैं शुक्राणु के चारों ओर सुरक्षित त्वचा बना देते हैं जिसके कारण वीर्य में उपस्थित शुक्राणु की शक्ति प्रहार से रक्षा की जा सकती है।

(4) जीवाणु द्वारा नष्ट होने से रोकना (To prevent bacterial competition)–वीर्य में जीवाणुओं का प्रवेश हो जाने पर शुक्राणु शीघ्रता से नष्ट हो जाते हैं। इस आक्रमण से रक्षा करने के लिए सल्फानिलमाइड पिनिसिलिन स्ट्रेप्टोमाइसिन इत्यादि प्रति जैविक पदार्थ मिलाते हैं।

(5) सूर्य की किरणों से रक्षा करना (Protection against sunlight)–वीर्य को सूर्य की सीधे किरण से रक्षा करना अति आवश्यक है क्योंकि सीधी किरण पड़ने से शुक्राणुओं की संख्या कम हो जाती है। जिसके कारण वीर्य की गर्भधारण क्षमता कम हो जाती है। इसलिए कृत्रिम योनि द्वारा साँड़ से वीर्य निकालने पर तुरन्त छाया में ले जाना चाहिए।

निम्नलिखित क्रियाओं को ध्यान में रखकर वीर्य संग्रह करने के वैज्ञानिकों ने निम्नलिखित तरीके निकाले-

(1) प्रशीतन (Refrigeration) तापक्रम पर वीर्य संग्रह करना,

(2) शून्य डिग्री तापक्रम से नीचे वीर्य संग्रह करना,

(3) इलीना विभिन्न तापक्रम अनुकारक विधि।

वीर्य परिवहन (Transport of Semen)–विभिन्न संग्रह केन्द्रों से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों पर वीर्य के पहुँचाने के लिए कुछ विशेष पात्रों की आवश्यकता पड़ती है जिनमें वीर्य रखकर आवश्यक दूर तक भेजा जा सके।

ये पात्र इस तरह के बने होने चाहिए जिससे उस पात्र में रखे हुए वीर्य को बाहरी तथा भीतरी किरणों द्वारा सुरक्षा दी जा सके। इन पात्रों का तापक्रम 4°C रखा जाता है।

हमारे देश में वीर्य परिवहन की एक जटिल समस्या है क्योंकि हमारे यहाँ तापक्रम अधिक, परिवहन सुविधा कम प्राप्त है। इस बात को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार के पात्र बनाये गये। ये पात्र विभिन्न पशु चिकित्सा एवं राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थाओं में तैयार किये गये थे। इन संस्थाओं के नाम निम्नलिखित हैं-

(1) भारतीय पशु चिकित्सा अनुसन्धान संस्थान, इज्जतनगर (I. V. R. I.)।

(2) राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, बंगलौर (N. D. R. I)।

(3) पशुपालन एवं पशु चिकित्सा यू. पी. महाविद्यालय, मथुरा।

उपरोक्त सभी संस्थाओं के नाम के अनुसार इन पात्रों का भी नाम रखा गया है-

(1) आई. वी. आर. आई. पात्र,

(2) एन. डी. आर. आई. पात्र,

(3) मथुरा पात्र।

5. गाय को गर्भित करना एवं गर्भ परीक्षा (Insemination and Pregnancy Diagnosis of the Cow)

उत्तम जाति के वीर्य का जो कि उचित परीक्षणों के बाद प्राप्त हुआ है, कोई महत्व नहीं रहता है यदि उसे उचित समय पर गाय के जनन अंगों में न पहुँचाया जाए अर्थात् गाय का गर्भित रहना इस बात पर निर्भर करता है कि उसके ठीक समय पर ऋतुमयी होने पर गर्भित किया जाये। प्राय: देखा गया है कि उत्तम वीर्य होने पर भी गाय गर्भित नहीं होती। यदि ठीक समय पर ठीक विधियों का प्रयोग किया जाये तो गाय के गर्भ न रहने का भय नहीं रहता। अर्थात् प्रजनकों को गाय के ऋतुमयी होने पर लापरवाही नहीं करनी चाहिए बल्कि ठीक समय पर प्रजनन कराना चाहिए अर्थात् कृत्रिम गर्भाधानों पर ले जाकर निपुण व्यक्ति से वीर्य सेचन करा लेना चाहिए। वीर्य सेचन करने वाले व्यक्ति को यह ध्यान देना चाहिए कि वीर्य सदैव उचित समय, उचित स्थान पर स्वच्छतापूर्वक गाय के प्रजनन अंगों में डाला जाये।

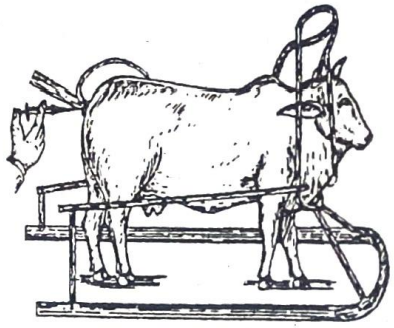
गाय को गर्भित करने के लिए निम्नलिखित तीन विधियों का प्रयोग किया जाता है-

(1) योनि में हाथ विधि (Hand in vagina method)–जैसा कि उच्चारण से ज्ञात होता है कि योनि में हाथ डालकर गर्भित करते हैं। इस विधि के अन्तर्गत बायें हाथ को साबुन से धोकर चिकना पदार्थ हाथ में लगाकर योनि में डाल देते हैं और ग्रीवा (os) के मुँह को टटोलते हैं जब दाये हाथ से स्वच्छ एवं जीवाणुओं रहित वीर्य वाहक नली को बायें हाथ के साथ योनि में डालकर ग्रीवा के मुँह में प्रवेश कराते हैं जब यह सर्वेक्स के मध्य पहुँच जाती है तो बाहर से पिचकारी द्वारा वीर्य पहुँचा देते हैं। यह विधि बड़े पशुओं के लिए अधिकतर प्रयोग होती थी परन्तु बहुत ही घृणित होने के कारण अब इसका प्रयोग नहीं होता है।

(2) योनि वीक्षण यन्त्र विधि (Vaginal speculum method)–यह प्रथम विधि के

समान ही है केवल इस विधि के अन्तर्गत हाथ के स्थान पर योनि वीक्षण यन्त्र को योनि में डालते हैं। इस यन्त्र को पहले किसी पदार्थ से चिकना कर लेते हैं और उसे योनि में डालते है और इसको सीधा करते हैं। पेच की सहायता से इसके मुँह को चौड़ा करते हैं और टॉर्च की सहायता से ग्रीवा (os) को देखकर पिचकारी द्वारा स्वच्छतापूर्वक वीर्य पहुँचा देते हैं।

(3) गुदा योनि विधि (Rectovaginal method)—यह सबसे सर्वोत्तम विधि है, इस विधि के अन्तर्गत साबुन से हाथ धोकर बायें हाथ में चिकना पदार्थ लगाकर गुदा में डालते हैं। उसके उपरान्त मलाशय से गोबर धीरे-धीरे बाहर निकाल देते हैं। अब हाथ को दायीं ओर बढ़ाकर गर्भाशय में ग्रीवा को टटोलकर उँगलियों की सहायता से पकड़ लेते हैं फिर दायें हाथ की सहायता से प्लास्टिक या काँच की वीर्यवाहक नली को, जो कि पहले से ही जीवाणु रहित कर ली जाती है, धीरे-धीरे योनि में डालकर गर्भाशय की ग्रीवा तक पहुँचाते हैं। इसके बाद पिचकारी की सहायता से वीर्य को काँच की नली में डालकर ग्रीवा तक पहुँचा देते हैं और धीरे-धीरे इस वीर्यवाहक नली को बाहर निकाल लेते हैं और बायें हाथ को मलाशय से बाहर निकाल लेते हैं।



चित्र—योनि वीक्षण यन्त्र विधि

आजकल प्राय: हमारे देश में इसी विधि का प्रचलन है क्योंकि इस विधि द्वारा पशुओं को तथा गर्भित करने वाले व्यक्ति को कम परेशानी होती है।

कृत्रिम गर्भाधान के लिए सावधानियाँ

(1) पशु को काबू में कर लेना चाहिए। (2) गर्भित करने से पहले वीर्य का परीक्षण कर लेना चाहिए। (3) यन्त्रों को जीवाणु रहित कर लेना चाहिए। (4) हाथ के नाखूनों को काट लेना चाहिए। (5) वीर्यवाहक नली को धीरे-धीरे डालकर ग्रीवा तक पहुँचा देना चाहिए अर्थात् वीर्य को ग्रीवा पर छोड़ना चाहिए।

गर्भ परीक्षण—कृत्रिम गर्भाधान के कुछ महीनों बाद गर्भ परीक्षण कराना एक आवश्यक कार्य है। हमारे देश में विभिन्न गर्भाधान केन्द्रों पर विभिन्न प्रकार की विधियाँ अपनाई जाती हैं। वैसे लगभग सभी विधियाँ एक समान हैं अर्थात् उन विधियों में बहुत थोड़ा अन्तर पाया जाता है।

इस विधि के अन्तर्गत गर्भ परीक्षण करने के लिए पहले हाथ को साबुन के झाग अथवा अन्य चिकने पदार्थ से चिकना करके मलाशय में डालते हैं और इसमें से गोबर बाहर निकाल देते हैं। मलाशय में प्रवेश किये हुए हाथ की उँगलियों और अँगूठों की सहायता से सीधे व सावधानी से जनन अंगों को टटोलते हैं और फिर दोनों गर्भाशयी श्रृंगी (Uterine horns) के आकार को टटोलकर देखते हैं। यदि एक गर्भाशयी श्रृंगी दूसरे की अपेक्षा आकार में वृद्धि कर रहा है तो यह समझना चाहिए कि गर्भवती है यदि कार्यकर्ता कुशल तथा अनुभवी है तो इस विधि द्वारा $1\frac{1}{2}$ महीने की गाय को गर्भवती होने पर पहचाना जा सकता है। यह विधि सबसे सर्वोत्तम है।

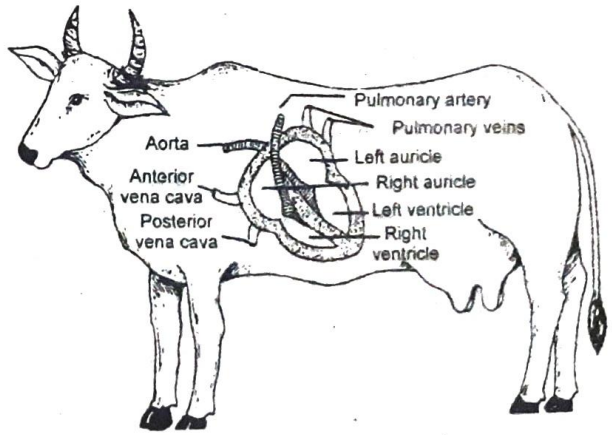
लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

प्रश्न 37. गाय तथा भैंस का रक्त संचार तंत्र को बतलाइए।
Describe the blood circulation of cow and buffalo.

उत्तर-

गाय तथा भैंस का रक्त संचार तन्त्र
(Blood Circulation System of Cow and Buffalo)

रुधिर वाहिनी तन्त्र—दिल, शिरायें तथा धमनियाँ मिलकर रुधिर वाहिनी तन्त्र बनाते हैं। इस तन्त्र का मुख्य कार्य शरीर के विभिन्न भागों में उनकी आवश्यकतानुसार रक्त संचार करना है। दिल, रक्त का एक पम्पिंग स्टेशन है। यहाँ से धमनियाँ द्वारा ऑक्सीजन युक्त रक्त शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाया जाता है तथा शिरायें, इस प्रकार प्रयोग में लाये गये रक्त को दिल में पुन: वापस लाती हैं। फेफड़ों में रक्त का शुद्धीकरण होता है।



चित्र—गाय का हृदय और उसके भाग

प्रश्न 38. गाय तथा भैंस के दुग्ध विष्कासन संस्थान को बतलाइए।
Describe the milk secretion system of cow and buffalo.

उत्तर-

दुग्ध निष्कासन संस्थान गाय एवं भैंस
(Milk Secretion System of Cow and Buffalo)

दूध निकालने वाले संस्थान को स्तनतन्त्र (mammary system) भी कहते है। स्तन ग्रन्थियाँ जननतन्त्र का ही एक भाग है। यह ग्रन्थियाँ दोनों प्रकार के लिंग में पाई जाती हैं, परन्तु केवल मादाओं में ही कार्यशील होती है। गाय की स्तन ग्रन्थियाँ ऊधस (Udder) के रूप में होती है जिसमें चार वासग्रह (quarters) पाये जाते हैं और प्रत्येक वासग्रह में एक-एक चूचुक (teat) होता है। प्रत्येक चूचुक बाहर की ओर ऊपर के किनारे में खुला होता है, जिसके चूचुक कुल्या (teat canal) कहते हैं।

यह नलिका चूचुक संकोचन (teat sphinctor) से जुड़ी होती है। इसके ऊपर चूचुक आशय (treat) होता है जो कि एक ग्रन्थि आशय (glad cistern) में जाकर खुलता है। इस आशय में से बहुत लम्बी-लम्बी प्रणालियाँ (dusts) निकलती हैं जो आगे चलकर कई शाखाओं में विभक्त हो जाती हैं। इसकी प्रत्येक शाखा एक वायुकोषा (alveolus) में जाकर समाप्त हो जाती है, जहाँ पर दुग्ध का निर्माण होता है प्रत्येक वायुकोषा के ऊपर दुग्ध उदार्सजन कोषायें (milk secretion cells) की परत होती है जहाँ एक दुग्ध संग्रह सूषिरक (milk collecting lumen) जुड़ा रहता है। बहुत-सी वायुकोषायें (alveoli) एक खण्डिका (lobule) के अन्दर रहती है। कई लोब्यूल्यस आपस में मिलकर एक खण्ड (lobe) का निर्माण करती हैं।

ऊधस के चारों बाह्यगृह स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करते हैं। ऊधस में बहुत-सी धमनी, शिरायें, लसीका तथा नर्वस आती हैं। स्तन ग्रन्थियाँ पहले धीरे-धीरे तथा जवान होने पर शीघ्रता से बढ़ती हैं।

प्रश्न 39. कृत्रिम गर्भाधान से क्या आशय है?
What is the meaning of Artificial Insemination.

उत्तर-

कृत्रिम गर्भाधान

"नर पशु का वीर्य प्राप्त करके मादा के ऋतुकाल (Heat Period) में एक विशेष प्रकार के पिचकारी जिसे (कृत्रिम गर्भाधान गन) कहते हैं के द्वारा उसे मादा की जननेन्द्रिय में पहुँचाना कृत्रिम गर्भाधान अथवा पशु गर्भाधान कहलाता है।"

अर्थात् "नर पशु से वीर्य किन्हीं कृत्रिम विधियों से प्राप्त कर, मादा के जनन अंग से स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखकर उचित समय और उचित स्थान पर कृत्रिम विधि द्वारा पहुँचाना ही कृत्रिम गर्भाधान कहलाता है।"

प्रश्न 40. कृत्रिम गर्भाधान के उद्देश्य लिखिए।
Write the aims of Artificial Insemination

उत्तर-

कृत्रिम गर्भाधान के उद्देश्य

(1) पशुओं की नस्ल सुधारना। (2) अच्छे साँड़ों की कमी की पूर्ति करना। (3) अच्छे व शक्तिशाली बछड़े पैदा करना। (4) अधिक व अच्छा दूध प्राप्त करना। (5) किसानों तक अच्छी नस्ल व गुणवान बछड़ों व बछियों को पैदा करने को प्रोत्साहन देना। (6) क्रोस प्रजनन से नस्ल सुधारना। (7) क्रोस प्रजनन में सफलता प्राप्त करना। (8) कम साँड़ों से अधिक गायों को गर्भित करना।

प्रश्न 41. कृत्रिम गर्भाधान के लाभ लिखिए।
Write the advantages of Artificial Insemination.

उत्तर-

कृत्रिम गर्भाधान से लाभ
(Advantages of Artificial Insemination)

(1) प्राकृतिक गर्भाधान की अपेक्षा दस गुनी गायों को गर्भित किया जा सकता है अर्थात् प्राकृतिक व कृत्रिम में एक व दस का अनुपात होता है। (2) प्राकृतिक ढंग से साल में 100 गायों को गर्भित किया जाय तो कृत्रिम विधि द्वारा उसी वीर्य से 1,000 गायों को गर्भित किया जा सकता है। (3) साँड़ों की कमी का लाभ उठाया जा सकता है। (4) घटिया वीर्य की आसानी से पहचान कर गाय को गर्भित न होने से बचाया जा सकता है। (5) साँड़ व गायों के एक-दूसरे के बाह्य रोगों से बचाया जा सकता है। (6) साँड़ों की प्रजनन शक्ति को आसानी से पहचाना जा सकता है। (7) पशु नस्ल सुधार में कम खर्च व आसानी रहती है। (8) पैदा होने वाले बछड़े और बछियों को आसानी से लेखा-जोखा में रख सकते हैं। (9) प्रजनन अभिलेख आसानी से रखा जा सकता है। (10) अच्छी नस्ल वाले वृद्ध साँड़ व अपाहिज साँड़ का भी आसानी से प्रयोग किया जा सकता है। (11) लूली, लंगड़ी गायों को आसानी से गर्भित कराया जा सकता है। (12) बाँझ गायों का उचित इलाज उचित समय पर कराया जा सकता है। (13) उन्नतिशील वीर्य को देश-विदेशों तक नस्ल सुधार हेतु आसानी से भेजा जा सकता है। (14) विभिन्न जातियों का वीर्य आसानी से प्रयोग किया जा सकता है। (15) हर कृषक कीमती अच्छी साँड़ नहीं रख सकता है जो उसे कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र पर आसानी से प्राप्त हो सकेगा। अत: खर्चे में बचत होती है।

प्रश्न 42. कृत्रिम गर्भाधान की सीमाएँ लिखिए।
Write the limitation of Artificial Insemination.

उत्तर-

कृत्रिम गर्भाधान के अवगुण / सीमाओं

(1) प्रशिक्षित एवं योग्य आदमी की आवश्यकता होती है। (2) प्रयोग होने वाले यन्त्र व वस्तुएँ मूल्यवान होती है। (3) प्राकृतिक विधि की अपेक्षा अधिक समय लगता है। (4) यन्त्रों आदि की सफाई में यदि गड़बड़ हुआ तो जनन रोग लग सकता है। (5) उत्तेजित पशुओं को वश में करना कठिन होता है।

■■■

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. गाय में चेहरा कहलाता है-
(a) नथनों के मध्य का भाग (b) नथनों के ऊपर का भाग
(c) नथनों के नीचे का भाग (d) नथनों के पीछे का भाग

2. पशुओं का शरीर जो हड्डियों के ढाँचे से बना होता है, उसे कहते हैं-
(a) कंकाल संस्थान (b) शरीर रचना संस्थान
(c) शरीर क्रिया संस्थान (d) पाचन संस्थान

3. गाय की गर्दन में कुल कितने भाग होते हैं-
(a) 5 (b) 4 (c) 6 (d) 3

4. गाय की पूँछ में पाये जाते हैं-
(a) 5 भाग (b) 4 भाग (c) 6 भाग (d) 8 भाग

5. गाय के शरीर में कुल कितने भाग पाये जाते हैं-
(a) 100 (b) 102 (c) 103 (d) 105

6. निम्नलिखित में से कौन-सा अंग नरों में नहीं पाया जाता है-
(a) अण्डकोष (b) अयन (c) मुतान (d) लिंग

7. उस अंग का नाम लिखिए जो मादा पशु में नहीं पाया जाता है-
(a) अयन (b) दुग्ध शिरायें (c) मुतान (d) थन

8. मुख के अन्दर नहीं पाये जाते हैं-
(a) दाँत (b) तालु (c) जीभ (d) सींग

9. निम्नलिखित में से कौन-सा भाग भैंस में नहीं पाया जाता है-
(a) कूबड़ (b) अयन (c) सींग (d) मुँह

10. भैंस के अधिक विकसित होता है-
(a) गलकम्बल (b) अधर वक्ष (c) कूबड़ (d) इनमें से कोई नहीं

11. कूबड़ पाया जाता है-
(a) देशी गाय में (b) संकर गाय में (c) होल्टीन गाय में (d) विदेशी गाय में

12. पाचन क्रिया सम्पन्न होती है, उसे कहते हैं-
(a) श्वसन संस्थान (b) जनन संस्थान (c) कंकाल संस्थान(d) भोजन प्रणाली संस्था

13. एक गाय का दिन में कितनी लार की मात्रा स्रावित करती है-
(a) 40 लीटर (b) 50 लीटर (c) 60 लीटर (d) 70 लीटर

14. गाय की छोटी आँत की लम्बाई होती है-
(a) 75 फीट (b) 130 फीट (c) 180 फीट (d) 200 फीट

15. जुगाली करने वाला पशु है-
(a) गधा (b) घोड़ा (c) बकरी (d) हाथी

16. निम्न में कौन-सा रूमीनेट नहीं है-
(a) गाय (b) भेड़ (c) बकरी (d) घोड़ा

17. गाय की बड़ी आँत की लम्बाई होती है-
(a) 25 फुट (b) 35 फूट (c) 45 फुट (d) 65 फुट

18. नवजात गौ-पशुओं में रूमैन का विकास होने में कितना समय लगता है-
(a) 4 सप्ताह (b) 8 सप्ताह (c) 12 सप्ताह (d) 16 सप्ताह

20. गाय के चेहरे पर लगभग हड्डियाँ पायी जाती हैं-
(a) 10 (b) 30 (c) 40 (d) 20

21. गाय के आमाशय होते हैं-
(a) 1 (b) 4 (c) 3 (d) 2

21. जुगाली करने वाले पशुओं में आमाशय का द्वितीय भाग कहलाता है-
(a) एब्रोमेजम (b) रेटिकुलम (c) ओमेजम (d) ग्रासनली

22. रूमीनेट में तीसरे आमाशय का नाम है-
(a) ओमेजम (b) रैटीकुलम (c) एवोमेजम (d) रूमेन

23. गाय के प्रत्येक पैर में हड्डियाँ होती हैं-
(a) 17 (b) 18 (c) 27 (d) 36

24. जुगाली करने वाले पशुओं के किस पेट नाम मधुमक्खी छत्ता है ?
(a) प्रथम आमाशय (रोमान्थिका) (b) द्वितीय आमाशय (जालिका)
(c) तृतीय आमाशय (मज्जिका) (d) चतुर्थ आमाशय (जठराशय)

25. गाय में गर्भाशय ग्रीवा की लम्बाई है-
(a) 3 सेन्टीमीटर (b) 5 सेन्टीमीटर (c) 7 सेन्टीमीटर (d) 10 सेन्टीमीटर

26. किसका पाचकता गुणांक नहीं निकाला जाता है-
(a) कच्ची प्रोटीन (b) तन्तुमय पदार्थ (c) ईथर निष्कर्ष (d) भस्म

27. पशुओं द्वारा आहार को सबसे पहले प्रयोग किया जाता है-
(a) कार्य करने के लिए (b) प्रजनन
(c) दुग्ध उत्पादन के लिए (d) शरीर निर्वाह के लिए।

28. पशु आहार में मुख्य रूप से कितने तत्व पाए जाते हैं-
(a) 7 (b) 8 (c) 6 (d) 9

29. निम्न में किस हरे चारे में प्रोटीन की मात्रा सर्वाधिक होती है-
(a) बरसीम (b) मक्का (c) रिजका (d) जई।

30. जानवर को कौन-सा आहार देना चाहिए-
(a) संतुलित आहार (b) निर्वाह आहार (c) वर्धक आहार (d) आदर्श आहार

31. मोटे चारे में तन्तुमय पदार्थ पाया जाता है-
(a) 18% से अधिक (b) 15% से अधिक (c) 10% से अधिक (d) 5% से अधिक

32. बरसीम बोने का उपयुक्त समय होता है-
(a) फरवरी (b) जून (c) सितंबर (d) मई

33. निम्नलिखित में से किस रोग में पशु के सभी प्राकृतिक छिद्रों से कोलतार जैसा झागदार स्राव निकलता है-
(a) लंगड़ी रोग (b) विष ज्वर (c) गलघोंटू (d) थनैला रोग

34. जीभ सूखकर मुँह से बाहर आना निम्न में से किस रोग का लक्षण है-
(a) गलघोंटू (b) ब्लैक क्वार्टर (c) पशु प्लेग (d) थनैला।

35. निम्न में से किस रोग में प्लीहा या तिल्ली का आकार बढ़कर सामान्य से कई गुना हो जाता है-
(a) जहरी बुखार (b) घोंटू (c) घुर्रका (d) थनैला

36. माँसपेशियों में सूजन, घातक आविषरक्तता एवं उच्च मृत्यु दर निम्नलिखित में किस बीमारी के लक्षण हैं-
(a) जहरी बुखार (b) घोंटू (c) लंगड़ी रोग (d) थनैला रोग

37. लंगड़ी रोग का निम्नलिखित में से कौनसा लक्षण नहीं है-
(a) माँसपेशियों में सूजन वाली जगह पर रगड़ने पर चटचटाहत की आवाज आना,
(b) पशु के साँस लेने के साथ घुर्र-घुर्र की आवाज आना,
(c) माँसपेशियों का अकड़ना
(d) उपर्युक्त सभी लक्षण होते हैं।

38. थनैला रोग का कारक हैं-
(a) फफूँद (v) जीवाणु (c) विषाणु (d) सूत्रकृमि

39. वर्षा के बाद कौन-सा रोग फैलता है-
(a) लंगड़ी रोग (b) खुरपका-मुँहपका (c) पौंका या पोंकनी (d) गिल्टी रोग

40. एन्थ्रेक्स (विष ज्वर) रोग का कारण है-
(a) फफूँद (b) जीवाणु (c) सूत्रकृमि (d) विषाणु

41. थनैला रोग किस कारक से होता है-
(a) स्ट्रेप्टोकोकाई (b) स्टेफिलोकोकाई
(c) कोरिन बैक्टीरियम पायोजिन्स (d) उपर्युक्त सभी

42. गाय कितने घण्टे तक गर्म रहती है-
(a) 9-18 घण्टे तक (b) 18-36 घण्टे तक
(c) 36-72 घण्टे तक (d) 72-90 घण्टे तक।

43. प्राकृतिक तथा कृत्रिम गर्भाधान में अनुपात होता है-
(a) 5 : 10 (b) 2 : 4 (c) 1 : 6 (d) 1 : 10

44. गायों में कौन-सी वीर्य एकत्रीकरण की सर्वोत्तम विधि है ?
(a) स्पंज विधि (b) योनि चम्मच विधि (c) मर्दन विधि (d) कृत्रिम योनि विधि

45. गौ-साँड़ के वीर्य में शुक्राणुओं की सान्द्रता प्रति घन मी. होती है-
(a) 60,000 (b) 1,00,000 (c) 8,00,000 (d) 10,00,000

46. साँड़ औसतन कितने वर्ष तक सर्विस के काम आते हैं-
(a) 5 वर्ष (b) 8 वर्ष (c) 12 वर्ष (d) 16 वर्ष

47. भारत में कृत्रिम गर्भाधान किस सन् में प्रारम्भ हुआ ?
(a) 1939 में (b) 1945 में (c) 1947 में (b) 1952 में

48. सम-प्रजनन के अतिरिक्त जो भी प्रजनन 4-5 पीढ़ी के सम्बन्धित नर-मादाओं में होता है, उसे कहते हैं-
(a) अन्तर वंश प्रजनन (b) संकरण (c) त्रिसंकरण (d) पितृ संकरण।

49. समः प्रजनन होता है-
(a) पिता × धेवती (b) माँ × बेटा (c) भाई × ममेरी बहन (d) पिता × बेटी

50. अन्तर वंश प्रजनन होता है-
(a) माँ × परनानी (b) सगा भाई × सगी बहन (c) पिता × बेटी(d) चचेरा भाई × चचेरी बहन

उत्तर- 1. (a), 2. (a), 3. (b), 4. (b), 5. (b), 6. (b), 7. (c), 8. (d), 9. (a), 10. (b), 11. (a), 12. (d), 13. (b), 14. (b), 15. (c), 16. (d), 17. (b), 18. (a), 19. (d), 20. (b), 21. (b), 22. (a), 23. (b), 24. (b), 25. (d), 26. (d), 27. (d), 28. (c), 29. (d), 30. (a), 31. (a), 32. (c), 33. (b), 34. (a), 35. (a), 36. (c), 37. (c), 38. (b), 39. (a), 40. (a), 41. (b), 42. (d), 43. (c), 44. (d), 45. (d), 46. (c), 47. (c), 48. (c), 49. (a), 50. (a),